पुकार

त्यागभरे जीवन की सुंदर अनुरागमयी अट्ठारह मनभावनी लुभावनी कहानियाँ

श्रीमती कमला त्रिवेणीशंकर

भूमिका लेखक
प्रोफेसर राजनाथ पांडेय, एम० ए०

प्रकाशक
श्रीलक्ष्मी प्रकाशन मन्दिर
गोरखपुर ।

श्रद्धांजलि

प्रेम की पावन प्रतिमा,

दिवंगता, भाभी सौभाग्यवती

पुनीता की स्नेहमयी

स्मृति में

कमला त्रिवेणीशंकर

भूमिका

"पुकार" पुस्तक की यशस्विनी लेखिका श्रीमती कमला त्रिवेणीशंकर की कहानियों में सबसे पहिले "मन का मोह" कहानी को पढने का हमारा सौभाग्य हुआ था। पढ़ते ही वह कहानी हृदय में भर गई और उसकी गूँज मानस में अब तक बनी हुई है! कठोर से कठोर हृदय वाले प्राणी को भी वह कहानी पढकर पिघलना पडेगा। अचरज की बात है कि जो चीज उसमें बयान हुई है वही पहिले भी कितने ही कहानी लेखकों की लेखनी से कहानी का रूप लेकर उतर चुकी है। कैरोली किसफलूदी नामक हंगारियन कहानी लेखक की "इन विज़िबल ऊड" नामक विश्वविख्यात कहानी और "मन का मोह" का विषय कितना समान है। पर दोनों के अत में भव्यता और व्यथा की कितनी दूरी है! जो सुघरता, जो सत्यता, जो सुशीलता, जो समवेदना और जो सदाचार "मन का मोह" को श्रीमती कमला त्रिवेणीशंकर की सुवर्णमयी लेखनी से मिला है वह अनूठा है, अभूतपूर्व है और अलौकिक है!

"मन का मोह" में तीन तीन प्यारे-प्यारे बच्चों और अत्यत प्यार व सम्मान करनेवाले कलेक्टर (आई० सी० एस०) पति के होते हुए भी भीतर-भीतर अभागिन बनी सौभाग्यवती उमाशशि की विषादमयी जीवन-लीला की कहानी कही गई है। उमा शशि के पति का नाम है श्रीकान्त कुमार।

श्रीकांत कुमार से विवाह होने के पहिले विचारी उमाशशि को उसके ही सगे भाई आनद ने अपने एक प्रिय अभिन्न हृदय मित्र से परिचित कराया था, और कुछ समय बाद उसी सुंदर युवक के साथ उमाशशि के घरवालों ने उसका विवाह होने की चर्चा चलाई। यहाँ तक कि एक दिन हँसी-हँसी में आनद की स्त्री रमा ने अपनी ननद (उमाशशि) का हाथ खींचकर उस युवक के हाथ में दे दिया था! उमाशशि भी प्रफुल्ल हुई नलिनी के समान सुखी हो उस सुदर युवक के प्रेम में निखरी जा रही थी। तब तक अचानक तुहिन-पात हुआ! उमा शशि के पिता के किसी परम मित्र की पतोहू के मरने का तार आया और वह मातमपुरसी मे वहाँ गए। जब लौटे तब वह जो मर गई थी उसकी मातृविहीना दुधमुँही बच्ची को अपने संग लेते आए। अब वह बच्ची उसी परिवार में पलने लगी!

अबोध उमाशशि उस अबोध बालिका को बडे प्रेम से पाल रही थी। दो तीन महीने बाद उस बच्ची के बिधुर पिता उसे देखने आए। तब उन्होंने उमाशशि को भी देखा, और उमाशशि को उन्हे भी देखना पड़ा। अब जाकर यह रहस्य सब पर खुला कि उमाशशि के पिता ने उस दुधमुँही बच्ची के पिता को ही उसे पालनेवाली उमाशशि का भावी पति निश्चित कर रखा था। उमाशशि तुहिनपरसी नलिनी की भाँति निष्प्राण हो गई! विवाह हो गया। उमा विरोध नहीं कर सकी। उसके प्रेमी ने भी उसे "विवाह की पावन वेला में छोटी बहिन कहकर आशीर्वाद दिया।"

उमाशशि श्रीकांत कुमार के विश्वास, आदर, प्रेम, सुख-सम्पत्ति सब कुछ की सोलहो आने स्वामिनी हुई और श्रीकांत कुमार उस पतिव्रता के स्वामी हुए। प्रेम की बेलि में फल भी लगे। श्रीकांत को उमाशशि के दिए हुए तीन बच्चे प्राप्त हुए। किन्तु·········किन्तु,

अपनालेने का प्रयत्न किया और सफल हुई। फिर तो दोनों ने मिलकर नरेन्द्र के ससार को स्वर्ग के समान सुखद कर दिया। विवाह करने के पूर्व परिस्थिति को सुलझाकर अनुकूल करना नरेन्द्र का कर्तव्य था, और विवाह के पश्चात् मनोरमा का। नरेन्द्र अपने कर्तव्य में असफल रहा, किन्तु मनोरमा सफल हुई!

सक्षेप में इस सग्रह की प्रत्येक कहानी में शिक्षित-सम्पन्न-आधुनिक संभ्रान्त-उच्च-वर्ग के सामाजिक जीवन की किसी न किसी मार्मिक उलझन का सूक्ष्म चित्रण तथा त्याग, करुणा और आदर्श के आधार पर उसका सुदर से सुदर सुलझाव मिलता है। लेखिका के विशाल तथा सुसंस्कृत हृदय की वेदनामय, द्वेषरहित सहानुभूति तथा करुणा उसकी कहानी के प्रत्येक पुरुष तथा नारी मे व्याप्त है। हो सकता है इन कहानियों में प्रेमचद के घीसू और माधव अथवा महादेव सुनार न मिलें पर यहाँ जो नरेन्द्र, श्रीकांत, सरिता, मनोरमा, चित्ररेखा आदि हैं वह महत्व में किसी से भी कम नहीं हैं।

यह भी हो सकता है कि देश-विदेश की सैकड़ों कहानियाँ पढ़े हुए लोगों को, "कफन" (प्रेमचद), "मुहब्बत का रग" (माखनलाल चतुर्वेदी), "झलमला" (पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी), "आश्रित" (रायकृष्णदास), "पुरस्कार" (प्रसाद), "नरी का परिचय" (रवीन्द्र-नाथ), अथवा "नेकलेस" (मोपासाँ),[1] "मिस्टीरियस मैनसन" ([illegible])[1], "लास्ट लेस्सन" (डॉडेट)[1], "पिस्टल शौट" (पुश्किन)[2],

जीवन-पथ का वह निराश आरोही, बच्चों में मिलकर बच्चों की तरह फूट फूटकर रो उठा !

श्रीकांत सजल नेत्रों से चुपचाप बैठे रहे !

यहीं वह कहानी समाप्त हो जाती है। प्रिय पाठक ! आप यह स्वीकार करेंगे कि कहानी का यह विषय स्त्री के जीवन का अत्यंत विकट तथा नाजुक पहलू है। फिर एक महिला द्वारा इसका वर्णन कितना अधिक महत्त्वपूर्ण साथ ही जिम्मेदारी का काम है। पर आप यह भी स्वीकार करेंगे कि लेखिका द्वारा इसका निवाह भी बहुत ही उचित और उत्तम रूप में हुआ है।

एक दूसरी कहानी में लेखिका ने आधुनिक ढग की उच्च शिक्षा प्राप्त गृहस्थवर्ग के जीवन में बहुत प्रचलित एक महत्व रखनेवाली बात का बड़ा सुदर विवेचन किया है। नरेन्द्र नाम का एक युवक है जो अपनी प्रथम विवाहिता पत्नी सरिता के रहते हुए भी अपने मन की एक बहू मनोरमा को ब्याह लाता है। सरिता ने गृहस्थी में अपने को सर्वथा मिटा दिया था और इसीसे नरेन्द्र के चमक-दमक पूर्ण जीवन से वह बहुत दूर हो गई थी। नरेन्द्र को सरिता में जीवन और यौवन का अभाव जान पड़ा। इस सबंध में अपनी ओर से कुछ अधिक न कहकर हम इतना ही कहेंगे कि अगर नरेन्द्र ने दूसरा विवाह करना निश्चित कर ही लिया था तो उसे यह जरूर चाहिये था कि वह त्याग की पुतली सरिता के सामने अपनी नई आकाक्षा रख देता। तब शायद वह दूसरे विवाह के लिए उसे अनुमति भी दे देती। पर नरेन्द्र से यह नहीं बना और उसने सरिता की सर्वथा अवहेलना करके विवाह कर ही लिया। पर सरिता ! वह वैसी ही शांत, अविचल, सेवा की मूर्ति बनी रही। अंत में उसके त्याग और सेवा-व्रत ने नरेन्द्र को हिला दिया और मनोरमा को भी जो उचित था उसे करने की प्रेरणा मिली। मनोरमा ने सरिता को

अपनालेने का प्रयत्न किया और सफल हुई। फिर तो दोनों ने मिलकर नरेन्द्र के ससार को स्वर्ग के समान सुखद कर दिया। विवाह करने के पूर्व परिस्थिति को सुलझाकर अनुकूल करना नरेन्द्र का कर्तव्य था, और विवाह के पश्चात् मनोरमा का। नरेन्द्र अपने कर्तव्य में असफल रहा, किन्तु मनोरमा सफल हुई।

सक्षेप में इस सग्रह की प्रत्येक कहानी में शिक्षित-सम्पन्न-आधुनिक संभ्रान्त-उच्च-वर्ग के सामाजिक जीवन की किसी न किसी मार्मिक उलझन का सूक्ष्म चित्रण तथा त्याग, करुणा और आदर्श के आधार पर उसका सुदर से सुदर सुलझाव मिलता है। लेखिका के विशाल तथा सुसंस्कृत हृदय की वेदनामय, द्वेषरहित सहानुभूति तथा करुणा उसकी कहानी के प्रत्येक पुरुष तथा नारी में व्याप्त है। हो सकता है इन कहानियों में प्रेमचद के घीसू और माधव अथवा महादेव सुनार न मिलें पर यहाँ जो नरेन्द्र, श्रीकांत, सरिता, मनोरमा, चित्ररेखा आदि हैं वह महत्व में किसी से भी कम नहीं हैं।

यह भी हो सकता है कि देश-विदेश की सैकड़ों कहानियाँ पढ़े हुए लोगों को, "कफन" (प्रेमचद), "मुहब्बत का रग" (माखनलाल चतुर्वेदी), "झलमला" (पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी), "आश्रित" (रायकृष्णदास), "पुरस्कार" (प्रसाद), "परीक्षा परिचय" (रवीन्द्र-नाथ), अथवा "नेकलेस" (मोपासाँ),[1] "मिस्टीरियस मैनसन" (बालजक)[1], "लास्ट लेस्सन" (डॉडेट)[1], "पिस्टल शौट" (पुश्किन)[2],

---

१. फरासीसी कहानी-लेखक। २ रूसी कहानी-लेखक। ३. इटालियन कहानी-लेखक। ४ जर्मन कहानी-लेखक। ५. आंग्ल कहानी-लेखक। ६. स्वीडन के कहानी-लेखक। ७. स्पेनी कहानी-लेखक। ८. पुर्तगाली कहानी-लेखक।

"लौंग एक्जाइल" (टायस्टाय)[२], "डार्लिंग" (चेखाव)[२], "पौट आव बेसील" (बोकाशिओ)[3], "कैवेलियर रस्टिकाना" (गिओवानी वीर्गा)[3], "सेवर्ड हैंड" (विल्हेल्म हौफ़),[४] "हगारियन काउनटेस" (फॉन हेज़),[४] "सेल्फिश जायट" (ऑस्कर वाइल्ड)[५], "लौयेन" (हील्डेनट्रूम हैल्सट्रूम)[६], "बर्ड इन स्नो" (पलाशियो वैल्डीज)[७], "हर सन" (जोज अलमीडा)[८]......इत्यादि इत्यादि ससार की महान कहानियों जैसी इन कहानियों में कोई कहानी न मिले, परन्तु "सच्ची लोकप्रिय कृति महान् कृति होती है" यह सिद्धान्त यदि सत्य है तो हम बिना संकोच कहेगे कि ये कहानियाँ महान् हैं। श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर की कहानियों में लोकप्रियता प्रधान गुण है। साथ ही इन कहानियों में सच्ची मौलिकता है। ये शुद्ध भारतीय कहानियाँ हैं। हमारी जीवन-परपरा से तथा कथा-साहित्य की परंपरा से इनकी सपूर्णतः एक-रसता है। इसीसे ये एकदम आकाश के फूल तोड़ लानेवाली जैसी शैली से अछूती रहकर सच्चे अर्थ में लोकप्रियता का गुण सचित कर सकी हैं। अब तक कमला जी ने लगभग डेढ़ दो सौ ऐसी कहानियाँ लिखी हैं। इन दिनों कहानी-पाठक वर्ग मे इनकी ख्याति भी खूब है और इनकी लिखी कहानियाँ बडे चाव से पढ़ी जाती हैं। विद्यार्थी युवकों और युवतियों के हृदय पर इन कहानियों की अमिट मगलमयी छाप पड़ेगी। हम हिन्दी साहित्य के मंदिर में श्रीमती कमला त्रिवेणी शकर का सादर स्वागत करते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि इनके द्वारा हमारे कथा-साहित्य का भडार खूब भरेगा।

वर्तमान समय में हमारे समाज में स्त्री जाति का महत्व हीन है। श्रीमती कमला त्रिवेणी शकर ने अपनी कृतियों द्वारा स्त्री जाति को गौरव दिया है। इससे उन्हे स्त्री-समाज का प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। आज हमारे समाज की निम्नवर्ग की असंख्य देवियाँ अत्यत साधारण

बातों की जानकारी न होने से प्रायः महान् करुणाजनक परिस्थितियों में डूब जाया करती हैं। हमारे देश का बहुसंख्यक गाँवों मे बसनेवाला समाज धन से तो रंक है ही, परिवर्तित आधुनिक जीवन-व्यापार के लिए अनिवार्य जानकारियों से और भी अधिक रंक है! अतः प्रत्येक सच्चे साहित्यिक का यह धर्म है कि वह बहुसंख्यक जनसमूह के हितार्थ उन्हें जीवन-व्यापार में शिक्षित करने के लिए भी अपनी लेखनी उठाये। यही युग-धर्म है! जब यह संकल्प लेकर साहित्यिक उठेगा तो अपने आप उसकी वाणी का भी अद्‌भुत संयमन हो जायगा। उसकी भाषा बड़ी सहल, बड़ी सरस, बड़ी मधुर हो उठेगी!

करुणा तथा सहानुभूति और उत्सर्ग का आपका संसार दरिद्र-नारायण के अनंत संसार में कल्पद्रुम के फूल बनकर बरस पड़े यही हमारी कामना है। तथास्तु!

श्रीअनंत चतुर्दशी,
२० सितंबर '४५ ई०

राजनाथ पांडेय
सेंट ऐंड्रूज कॉलेज, गोरखपुर।

रागिनी

कचहरी से लौटे मधुवन के सामने बूढ़े रघुनाथ ने तार का लिफाफा बढ़ाकर कहा—"अभी-अभी आया है !"

लिफ़ाफे को हाथ में लेते ही मधुवन का चित्त अनेक आशङ्काओं से भर उठा। लिफ़ाफ़ा फाड़कर पढ़ते ही उन्होंने रघुनाथ से कहा—"रविनाथ की हालत बहुत खराब है, मुझे इसी सात बजे की तूफान मेल से जाना है। चीजें सब ठीक कर रखो।"

"बहुत अच्छा !" रघुनाथ चाय लेने के लिए लौट पड़ा।

"रघू चाचा !" मधुवन ने पुकारा—"चीजें ज्यादा नहीं लेनी हैं, चाय मैं पिऊँगा नहीं, छः बज गए हैं, जल्दी ही कोई गाड़ी कर लाओ, कपड़े मैं रखे लेता हूँ।"

बूढ़े रघुनाथ ने दबे स्वर में पूछा—"मैं भी तो चलूँगा।"

"हाँ, हाँ, जल्दी करो, वक्त कम है।"

चाय का प्याला युवक मालिक के सामने मेज पर रखकर रघुनाथ ने कहा—"तुम पियो, मै दस मिनट में सब ठीक किए लेता हूँ।"

और आध घंटे के बाद मधुवन की गाड़ी स्टेशन की ओर चल पड़ी।

दूसरे दिन साढ़े ग्यारह बजे भुवाली सैनिटोरियम में पहुँच कर मधुवन ने देखा, रविनाथ हड्डी का ढाँचा-मात्र रह गया है। दो साल पहले का स्वस्थ सबल रविनाथ कब का विदा हो चुका है, रह गई है उसकी एक छाया मात्र...।

मधुवन ने सप्रेम उसके ललाट पर हाथ फेरते हुए कहा—"और पहले ख़बर क्यों नहीं दी, रविनाथ भैया ? अकेले...।"

बीच ही में रविनाथ ने टोक कर कहा—"अकेला नहीं हूँ, रागिनी भी तो है। अपनी चिन्ता नहीं है मुझे, सोचता हूँ इस परदेश में अगर मुझे कुछ हो गया, तो उसका क्या होगा ? इसीलिए तुम्हें तार दिया। बैठो अच्छे तो रहे, बड़े स्वस्थ लग रहे हो, रंग कितना निखर आया है। रघू चाचा की रोटियाँ बड़ी मीठी होती हैं, क्यों ?"

रघुनाथ सामने आया। पाँव के पास बैठ कर बोला—"इतनी तबीयत ख़राब हो गई तुम्हारी, भैया, हम लोगों को ख़बर तक न दी, हम लोग क्या ग़ैर थे ?" उसकी आँखों से टप-टप आँसू चू पड़े।

सूखे ओठों पर एक म्लान मुस्कान लाकर रविनाथ ने कहा—"ग़ैर नहीं समझा, रघू चाचा। पहाड़ों पर लोग अच्छे होने के लिये ही तो आते हैं। रोते क्यों हो, मैं भी अच्छा हो जाऊँगा न ?"

बग़ल के कमरे की ओर दृष्टि फेर कर रविनाथ ने हल्की आवाज़ से पुकारा—"राग्...राग् , इधर आओ।"

परदा हटा कर रागिनी कमरे में आ गई। उसे निकट पाकर रविनाथ ने कहा—"इन मधुवन को पहचान लिया तुमने? और यह रहे रघू चाचा! और मधुवन! रागिनी को तो तुम जानते ही हो। अब ले जाओ, इन लोगों को कुछ खाने-पीने को दो। फल मँगाए थे न आज?"

अत्यन्त लज्जा से सहमी-सकुची रागिनी ने सिर हिला कर स्वीकृति दी, और दवा की शीशी उठा कर बोली—"दो बज गए, दवा दूँ, या फल का जूस?"

"दवा की जरूरत अब नहीं रही, जूस ही लाओ...।" लेकिन एक क्षण बाद रविनाथ ने रागिनी के उतरे हुए चेहरे पर नजर पड़ते ही कहा—"अच्छा, लाओ, दवा ही दे दो, तुम मेरा विश्वास बिलकुल नहीं करतीं न?"

दवा पिला कर रागिनी मधुवन के लिए जलपान लेने चली गई।

आज तीन महीने बाद रविनाथ को मधुवन के हाथों सौंप कर रागिनी अलग कमरे में जाकर लेटी। आज वह निश्चिन्त थी, तब भी आँखों में नींद का नाम न था। स्मृति-पट पर अनेक रंगीन चित्र उठते-मिटते रहे—मधुवन को उसने देखा था तब, जब वह शैशव के द्वार पर थी, लेकिन जानती है उसे बहुत दिनों से। मातृ-पितृहीन होकर वह जिस दिन अपनी स्नेहमयी जीजी (रविनाथ की पत्नी) की छाया में आई, उसके कुछ ही दिनों बाद इसी मधुवन को लेकर उसके विवाह की

चर्चा चल पड़ी थी। जीजी की प्रेरणा से रविनाथ ने मधुवन के पास शीघ्र से शीघ्र विवाह कर लेने के लिए लिखा भी था, और मधुवन ने उत्तर में लिखा था—"रविनाथ, तुम जानते हो कि एक नये वकील की प्रैक्टिस कैसी होती है। और यह भी तुमसे छिपा नहीं है कि मेरे पास पहले की कोई भी स्थायी सम्पत्ति नहीं है। ऐसी स्थिति में विवाह के लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं हूँ। रागिनी तुम्हारी पत्नी की बहिन है, उसके विषय में मुझे अधिक छानबीन करने की आवश्यकता नहीं है। फिर अभी तो उसकी उम्र भी अधिक नहीं, आगे कुछ सोच-विचार कर लिखूँगा!"

वह पत्र आज तक रागिनी के ट्रंक में एहतियात से रखा है। पर काल की विचित्र गति! जीजी प्रथम प्रसव के समय ही शिशु के साथ ही साथ काल के कठोर पंजों में जा पड़ीं। उस सूने प्रकोष्ठ में स्नेह-दीप-सी रागिनी अपने अनभ्यस्त हाथों से धीरे-धीरे घर का काम चलाती रही। साल भर और निकल गया। रविनाथ ने फिर मधुवन के पास लिखा। इस बार उत्तर में मधुवन ने लिखा था—"भाभी की अनुपस्थिति में इस समय रागिनी-सी पत्नी की जितनी आवश्यकता तुम्हें है उतनी मुझे नहीं। रघू चाचा के संरक्षण में गृहस्थी गृहणी के बिना भी मजे में चल रही है। सच मानो, मैं तो तुमसे यही अनुरोध करूँगा कि तुम उससे विवाह कर लो। तुम्हारे ही शब्दों में 'रागिनी-सी सुन्दर और गृह-कार्य में कुशल लड़कियाँ बहुत कम होंगी।' फिर तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। हाँ,

विवाह में मुझे अवश्य बुलाना। इस दूसरे पत्र का उत्तर लिख-कर रविनाथ रागिनी को पोस्ट करने के लिए दे कर आफिस चले गये।

कौतूहलवश उसने लिफाफा खोल कर पढ़ा था—

रविनाथ ने बहुत ही कठोर शब्दों में मधुवन की भर्त्सना करते हुए लिखा था—"तुम जानते हो कि रागिनी को मैंने बचपन से बेटी की तरह पाला है। आज उसी के सम्बन्ध में तुम्हारे पत्र में विवाह शब्द पढ़ कर मैं तुम पर क्रोध किए बिना न रह सका। दुनिया में पात्रों की कमी नहीं, लेकिन एक शुभ-चिन्तक मित्र होने के नाते मैं चाहता था कि रागिनी को तुम्हारे ही हाथों सौंप कर उसकी जीजी की अन्तिम इच्छा पूरी कर उससे उऋण हो जाता! लेकिन शायद यह भगवान् की इच्छा नहीं है। रागिनी अभी पढ़ रही है, और आगे पढ़ने की उसकी इच्छा भी है। कालेज की सुविधा के ख़्याल से मैं तुम्हें विवाह के लिए और विवश कर रहा था।"

पत्र पढ़कर रागिनी ने उसे डाक में नहीं छोड़ा, चुपचाप उठा कर ट्रंक में बन्द कर दिया।

इसके बाद दो अभिन्न मित्रों का सम्पर्क कुछ दिन के लिए टूट-सा गया। रविनाथ का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। हल्के ज्वर के साथ खाँसी, और कभी-कभी रक्त का वमन। पाँच-छः महीने में ही रविनाथ अशक्त हो गया। बहुत हठ करके रागिनी उसे भुवाली आने के लिये विवश कर सकी थी। और अपनी

उस स्नेहमयी जीजी की धरोहर पितृ-तुल्य जीजा जी की सेवा में उसने अपने मन, प्राण तक की बाजी लगा दी। लेकिन भाग्य में कुछ और ही लिखा है, वह न जान सकी।

स्वप्न-जाल में उलझी रागिनी कब निद्रा की गोद में जा पड़ी, उसे ज्ञात नहीं। सुबह नींद खुलते ही उसने सुना रघुनाथ उसे जगा रहा है—"बहूरानी, बहूरानी, उठिए, रविनाथ भैया आपको बुला रहे हैं।"

उद्विग्न मन से उठ कर वह दौड़ पड़ी। वैसे ही अस्त-व्यस्त बिखरे केश। रविनाथ के निकट खड़ी होकर उसने देखा—साँस इस वक्त ज़ोरों से फूल रही है, मधुवन और डाक्टर पलङ्ग के पास चिन्तित-से खड़े हैं।

दृष्टि पड़ते ही रविनाथ ने अस्फुट स्वर में कहा—"रागिनी!"

रागिनी कुछ और झुक गई—"मैं अब चला राग्?"

रागिनी रो पड़ी।

रविनाथ ने स्नेह-पूर्वक उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा—"मधुवन, राग् के ही लिए मैंने तुम्हें इतनी दूर से आने की तकलीफ दी। पहले भी मैंने इसे तुम्हें देना चाहा था, तब तुमने इनकार कर दिया था। लेकिन आज तो शायद तुम इनकार न कर सकोगे। इसे हमेशा अपनी छाया में रखना...। और, राग्, तुम्हारे लिए मैं कुछ न कर सका, एक निरापद आश्रय तक न ढूँढ सका। मुझे क्षमा करना, मेरी बच्ची...।" आवाज़ उखड़ गई।

मधुवन ने रागिनी को हटा दिया। जल्दी-जल्दी इंजेक्शन की तैयारी होने लगी। जीवनदीप कुछ क्षण के लिए प्रज्ज्वलित हो उठा। सिसकती हुई रागिनी पलङ्ग के पास लेट गई।

रविनाथ के हाथ-पाँव निश्चेष्ट हो रहे थे। अपने दुर्बल हाथों से रागिनी का हाथ मधुवन के हाथों में देते हुए रविनाथ की आँखों से आँसुओं का एक सागर-सा उमड़ आया। ज़बान ऐंठ रही थी, मूक आँखों ने अपना सन्देश कहा, और पुतलियाँ स्थिर हो गईं! मधुवन चीख़ उठा। रागिनी गिरकर कटी मछली की तरह तड़पने लगी। चादर खींच कर डाक्टर ने शव को ढँक दिया, और बाहर निकल आया।

उसी दिन शाम को मधुवन सबको ले कर घर लौट आया।

महीनों बाद एक दिन कोर्ट से लौट कर मधुवन ने रघुनाथ को बुला कर कहा—"रघू चाचा, तुम तो शायद सुन चुके हो, इसी महीने भर के बीच में मेरे बारे में लोगों ने क्या-क्या उड़ाना शुरु कर दिया है। मैं भी सोचता हूँ, मुझे विवाह कर ही लेना चाहिए।"

"ज़रूर कर लेना चाहिए, भैया!" रघू ने अपनी सहमति प्रकट की।

"तो फिर तुम रागिनी से इसका ज़िक्र कर देना।"

"अच्छा।"

लेकिन उस दिन रघुनाथ ने रागिनी के कमरे में जाकर देखा—शाम को ही वह चादर ओढ़े खिड़की के सामने चुपचाप आँख बन्द किए पड़ी हुई थी।

"बहूरानी, बहूरानी !"

एक क्षीण ध्वनि से रागिनी कराह उठी। फिर करवट लेकर बोली—"रघू चाचा !"

"बेटी !"—रघुनाथ ने बढ़कर उसके ललाट पर हाथ रखा—"बुख़ार !" वह चौंक पड़ा।

लौट कर मधुवन से कहा—"बुख़ार बहुत तेज़ है !"

एक क्षण असमञ्जस में पड़ कर मधुवन ने कहा—"यह लो, मेरी चिट्ठी। डाक्टर घोष से मेरा नमस्कार कहना, और फौरन उन्हें लेकर लौटना।"

पाँव में चप्पल डाल कर वह रागिनी के कमरे में गया। आज पहली बार रागिनी के कमरे में पाँव रखते वह क्षण भर हिचकिचाया, फिर निकट जाकर खड़ा हो गया। अभी तक कोई ऐसा अवसर न पड़ा था कि वह रागिनी को पुकारता या विशेष घनिष्ठता से बात-चीत करता। रविनाथ की मृत्यु अचानक हो गई, और वह कुछ भी स्पष्ट न जान सका कि रागिनी विवाहिता है या कुमारी।

मधुवन ने मुँह पर की चादर हटा कर कहा—"बुख़ार क्या आज ही आया है ? आपने बताया नहीं।"

कमल-पंखुरी-सी आँखें खोल कर रागिनी ने एक क्षण देखा, और उठकर बैठ गई।

बिस्तर की चादर खींच कर साफ करते हुए मधुवन ने कहा—"आप आराम से लेटिए। डाक्टर आ रहे हैं।"

लेट कर उसने चुपचाप आँखें बन्द कर लीं।

बग़ल में पड़ी कुरसी खींच कर मधुवन बैठ गया। आज अन्वेषक दृष्टि से उसने देखा, हरी साड़ी गुलाबी मुख की शोभा मलीन होते हुए भी कितनी आकर्षक थी! रंगीन चूड़ियों से भरी कलाई सघन केशों के बीच मुड़ी हुई कितनी सुन्दर लगती थी।

मधुवन एक क्षण में सँभल गया। रवि भैया की धरोहर मेरे लिए श्रद्धेय, पूज्य!

सहसा रागिनी चिल्ला उठी—"पानी-पानी!" मधुवन ने पानी का गिलास लेकर दूसरे हाथ के सहारे उठा कर पिला दिया।

रघू ने आकर कहा—"भैया, डाक्टर आ गए हैं।"

डाक्टर घोष ने आकर देखा—स्टेथसकोप लेकर अच्छी तरह जाँच की—और तनिक चिन्तित स्वर में कहा—"ये बहुत कमज़ोर मालूम होती है। बुख़ार आज ही का नहीं है, बल्कि कई दिन का मालूम होता है। थोड़ी असावधानी भी बर्ती गई है। रात, शायद, सर्दी भी लग गई, साँस कुछ भारी-भारी-सी चल रही है।"

मधुवन के पास कोई उत्तर नहीं था। उसने रागिनी से कभी भी कोई सम्पर्क रखने की चेष्टा नहीं की थी। आवश्यकता पड़ने पर रघुनाथ के ज़रिये बातें कहला देता था।

रघुनाथ भी कुछ अधिक न बतला सका—उसने रागिनी को नहाने जाते देखा था, रात उसके कमरे की बत्ती बहुत जल्दी बुझ गई थी, और यह भी उसे मालूम हुआ था कि रागिनी ने

रात खाना नहीं खाया था। लेकिन रसोइये ने बतलाया—यह कोई नई बात नहीं, वे अकसर रात में नहीं खातीं।

मधुवन ने अलग डाक्टर को ले जाकर पूछा—"क्या ख्याल है आपका, अच्छी हो जायेंगी न ?"

डाक्टर ने ढारस देते हुए कहा—"मैं पूरी कोशिश करूँगा। मुझे लगता है, मरीज़ के हृदय पर कोई धक्का लगा है जिससे वह भीतर ही भीतर बहुत परेशान है। आप कुछ बता सकते हैं?"

बहुत सोचने पर भी मधुवन की समझ में कुछ न आया। क्या बात हो सकती है ? कम से कम इधर तो कोई घटना ऐसी हुई नहीं।

डाक्टर ने कहा—"मैं दवा भेजे देता हूँ। आप सावधानी से परिचर्या कीजिए। आवश्यकता होने पर मुझे फौरन खबर दीजिएगा। वैसे कोई डर नहीं है। टेम्परेचर बराबर लेते रहियेगा।

रात को बुखार फिर बढ़ गया। रागिनी अब अनर्गल प्रलाप के साथ उठ-उठ कर भागने लगी।

सूचना पाते ही डाक्टर घोष ने आकर देखा। टेम्परेचर लिया, बुख़ार बहुत तेज़ था। रागिनी अब थक गई थी। डाक्टर ने सावधानी से उसे लिटा दिया, और बर्फ की थैली भरने लगे।

प्रलाप रात भर चलता रहा। बारी-बारी डाक्टर और मधुवन ने बैठे ही बैठे झपकी ली। सुबह बुख़ार बहुत कम हो गया। रागिनी को नींद आ गई।

डाक्टर ने एकान्त में मधुवन को बुला कर पूछा—"क्या रागिनी विवाहिता है ?"

मधुवन एक क्षण चुप रह कर बोला—"मैं ठीक नहीं जानता।"

"हो सकता है कि मेरा ख़्याल ग़लत हो, लेकिन ऐसा लगता है कि जिसे वह अपना पति समझती है वह फिर विवाह करने जा रहा है। उसका प्रलाप एकदम निरर्थक तो नहीं हो सकता।"—डाक्टर ने कहा।

मधुवन ने सिर झुका कर कहा—"इस विषय में संभवतः वही कुछ बता सकती है। आप यदि चाहें, तो पूछ सकते हैं।"

डाक्टर ने कुछ सोचते हुए कहा—"अच्छा, अभी तो उसे सोने ही दें !"

मधुवन के हृदय में आज एक अन्तर्द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ। रविनाथ के कहे एक-एक शब्द उसे याद आने लगे—'तुम्हारे लिए एक निरापद आश्रय तक न ढूँढ़ सका। मधुवन, राग को तुम हमेशा अपनी छाया में रखना...' और हाँ उस दिन रघू चाचा के 'बहूरानी' कह कर पुकारने पर वह लज्जा से कितनी लाल पड़ गई थी ! और तनिक संकोच के साथ बोली भी तो थी—'रघू चाचा, मुझे तो सब लोग रागिनी ही कह कर पुकारते हैं, तुम भी मुझे रागिनी ही कहा करो,...'...'मुझे क्षमा करना मेरी बच्ची !'

सामने पलंग पर पड़ी रागिनी कराह उठी। मधुवन ने दवा दे कर पूछा—"कैसी तबीयत है, राग् ?"

'राग् !' कुम्हलाये ओंठों ने शब्द दुहरा दिया। फिर आँखें खोल कर रागिनी ने कहा—"मैं अब अच्छी हूँ। आपने बड़ी तकलीफ उठाई।"

"तकलीफ !" मधुवन ने स्नेहपूर्वक उसके ललाट पर हाथ फेर कर कहा—"मैं तुम्हारे लिए ग़ैर हूँ, राग् ?"

कातर आँखों से मधुवन की ओर देख कर रागिनी धीमे स्वर में बोली—"ऐसा मैंने कब कहा ?" उसकी आँखें छलछला आई। मधुवन ने अपने हाथों से उसके आँसू पोंछ डाले।

तीसरे दिन बहुत सुबह उठ कर रागिनी बगीचे में फूल चुनने निकली। रघुनाथ ने देख लिया। निकट आ कर स्नेह-पूर्वक पूछा—"तुम इतने सवेरे बगीचे में क्यों जा रही हो, बेटी ?"

"तुम जानते नहीं, रघू चाचा, आज मधुवन बाबू का ब्याह है न ?"

"जानता तो हूँ, बेटी, लेकिन ब्याह तो घर पर नहीं होगा। कचहरी में ब्याह होगा, अँग्रेज़ी ढंग से। फिर ये फूल क्या होंगे ?"

रागिनी मुस्करा कर फूल तोड़ने लगी ! रघुनाथ ने मालिक को खबर दी—मधुवन ने सुन कर हँस दिया और कहा—"पगली है, चाचा। तुम जाओ और प्रबन्ध करो। ठीक साढ़े

पाँच बजे कुछ लोग चाय पर आने वाले हैं। मैं भी उसी वक्त लौटूंगा।"

"और बहूरानी? ब्याह किस वक्त होगा?"

मधुवन हँस पड़ा—"इतनी फिक्र अभी से बहूरानी को! वह.. वह तो आवेंगी ही। इतनी चिन्ता क्यों है? नीचे के दोनों कमरे ठीक कर देना, और यह लो, तुम्हारे लिए कुछ कपड़े कल खरीद लाया था। शाम को ज़रूर पहन लेना!"

बूढ़ा रघुनाथ प्रफुल्ल मन से घर के और प्रबन्ध में जुट गया। नई स्वामिनी के आगमन ने उसके जर्जर शरीर में आनन्द की धारा बहा दी। इस घर की सेवा में उसने अपना जीवन ही बिता दिया था। एक-एक कर के मालिक, मालकिन चल दिए। तब मधुवन की उम्र १५-१६ वर्ष से अधिक न थी। मालिक ने मरते समय मधुवन का हाथ रघुनाथ के हाथ में देकर कहा था—'रघू, मनुष्य-जीवन में एक समय ऐसा भी आता है जब प्रत्येक मनुष्य का मन पुत्र, परिवार के लिए तड़प उठता है! मैं मधुवन को तुम्हारे हाथों में सौंप जाता हूँ। मुझे वचन दो कि जीवन-पर्यन्त तुम उसका साथ दोगे। ईश्वर करे मधुवन तुम्हारे पुत्र का अभाव दूर कर सके! जो सुख मैं न देख सका, उसे तुम आजीवन देखो!"

छोटे भाई की तरह स्नेह करने वाले उन मालिक की स्मृति आज रघुनाथ के हृदय में उभर आई। वर्षों के सूने प्रकोष्ठ मे आज नव-वधू का प्रवेश होगा। वह कितना खुश है!

रागिनी फूलों की डोलची लिए कुरसी पर उठँग गई, और एक कमज़ोर आवाज़ में बोली—"रघू चाचा, आज की सारी व्यवस्था मैं करूँगी। तुम सिर्फ देखते जाओ, जहाँ भूल हो वहाँ बतला देना।"

"तुम ? नहीं, बेटी, तुम बहुत कमज़ोर हो। अभी परसों बुख़ार उतरा है। मालिक सुनेंगे, तो नाराज़ होंगे ! तुम सिर्फ बहूरानी की चीजें, और उनके कमरे को दुरुस्त कर दो। बाक़ी सब मैं कर लूँगा।"

इतने में मधुवन आ गया, बीच में पड़ कर बोला—"राग् , आज तुम बहुत खुश हो ! और रघू चाचा भी तो !"

बीमारी ने रागिनी का बहुत कुछ संकोच दूर कर दिया था। अपनी करुण मुस्कान में उत्फुल्लता भरती हुई वह बोली—"सच आज मैं बहुत खुश हूँ ! और रघू चाचा भी खुश क्यों न होंगे ? आज उनकी बहूरानी जो आ रही हैं !"

"और तुम्हारी ?"—पूछा मधुवन ने।

"मेरी...मेरी..." रुँधे गले के शब्द स्पष्ट न हो सके। मधुवन ने आश्चर्य से देखा, अभी क्षण भर पहले की हँसती आँखों में आँसू की बूँदें छलक पड़ी हैं।

चार बजे कोर्ट से लौट कर मधुवन सीधे रागिनी के पास पहुँचा। पर्दा उठा कर मधुवन ने देखा बड़े कमरे में लगे उसके चित्र पर सुबह के फूलों का एक सुन्दर रंगीन हार झूल रहा है, और रागिनी दरवाजे की तरफ पीठ किए एकाग्र मन से उसे देखने में तल्लीन है !

"रागिनो !" मधुवन ने धीरे से पुकारा।

रागिनी चौंक पड़ी। सामने फिर कर बोली—"आप... आप आ गये...अकेले !"

"हाँ, रागू, मैं आ गया, लेकिन मैं अकेला नहीं हूँ।"

"सच ? तो उन्हें आपने बाहर ही छोड़ दिया ?"

सब कुछ भूल चपल बालिका को तरह वह कमरे के बाहर जाने को हुई कि मधुवन ने सामने आकर रोक लिया। "आज मेरा ब्याह है, रागिनो और तुमने कपड़े तक नहीं बदले !"

"ओह ! मैं अभी आती हूँ।"

एक सफेद साड़ी पहन कर वह तुरन्त आ गई। जूही की मुरझाई कली-सी एक मलीन हास्य-रेखा उसके ओंठों पर बलात् खिंच गई। उसने कहा—"चलिये।"

मधुवन उसके निकट आकर बोल उठा—"आज मेरे जोवन का शुभ दिन है, रागू। क्या तुम मेरा अभिषेक नहीं करोगी ?"

"अभिषेक !" रागिनी क्षण भर के लिए मौन हो गई, फिर बोली—"करूँगी क्यों नहीं ? ठहरिये।"

चित्र पर का सुन्दर हार उतार कर उसने मधुवन के गले में डाल दिया, और पाँवों पर झुक कर बोली—"बस, मेरे पास तो अभिषेक के लिए यही बच रहा है !"

"नहीं, रागू, नारी अशेष है"—कहते हुए मधुवन ने उसकी बाहुओं को पकड़ कर उसे उठा लिया। "इसे पढ़ो। रविनाथ के इस पत्र ने सब कुछ स्पष्ट कर दिया। अब चलो, हम रविनाथ भैया का आशीर्वाद लें !"

दोनों रविनाथ के चित्र के सामने झुक गये। काँपते हाथों से रागिनी ने पत्र लेकर पढ़ा, रविनाथ का वही पुराना पत्र...। उसकी आँखें आश्चर्य से भर गईं। दरवाजे पर ठिठके रघू चाचा की आँखें मुस्करा उठीं।

नारी का स्वाभिमान

लम्बी चौड़ी अस्पताल की विशाल इमारत के बाईं ओर महेन्द्रप्रताप की कार ठहर गई। गेट पर लगा साइनबोर्ड (लेडी डाक्टर-मिस मोहिनी बाला) पढ़ते हुए राजेश्वर ने कहा—हाँ यहीं तो उतरना है। दोनो मित्र नीचे उतर पड़े।

सामने खुशनुमा छोटी सी फुलवारी थी, जिसमें रंग बिरंगे फूलों के मनोहर गमले सजाए गए थे। बेले की सुन्दर लता थी और चार छः बेंत की कुर्सियाँ पड़ी थीं, शीशे के टब में रंगीन मछलियाँ उछल रही थीं। वहीं ३२-३३ वर्ष की दुबली पतली मोहिनी एक कुर्सी पर बैठी अपने जीवन की किसी गुत्थी को सुलझा रही थी।

नमस्ते के बाद राजेश्वर ने परिचय दिया—आप यहाँ के सिटी मैजिस्ट्रेट मि० महेन्द्र प्रताप जी हैं। और स्मित हास्य उनके मोटे-मोटे होठों पर बिखर पड़ा।

नमस्ते! आप से मिलकर बड़ी खुशी हुई—मिस मोहिनी के पतले और बिम्ब अधरों पर कम्पन छा गया। मृदु हास्य के साथ महेन्द्रप्रताप ने कहा—जगह बिलकुल नई है क्या आप को पसन्द आई?

मेरी अपनी पसन्द का तो कोई स्थान नहीं, लेकिन शहर के बाहर और एकान्त होने से मुझे जरूर पसन्द है।—आँखें झुकी जा रही थीं और पलकें भारी हो रही थीं।

"शहर से दूर रहने की वजह से सम्भवतः जरूरत की छोट-मोटी चीजें भी यहाँ न मिल सकेंगी—राजेश्वर ने मोहिनी पर दृष्टि जमाकर कहा।

"नहीं मिस्टर शर्मा ! मनुष्य की आवश्यकताएँ तो उसके ऊपर निर्भर हैं वे समयानुसार घटाई और बढ़ाई जा सकती हैं। और वैसे तो मुझे एकान्त विशेष प्रिय है भी।—इस बार दृष्टि उठते ही मोहिनी की आँखों में घृणा झलक उठी।

आप यहाँ बिलकुल नई आई हैं। आपकी किसी भी आवश्यकता पर हम लोग सेवा के लिए हाजिर होंगे।—महेन्द्र प्रताप ने विनीत शब्दों में कहा !

धन्यवाद ! जरूरत पड़ने पर कष्ट दूँगी। मोहिनी की विरक्ति इस बार स्पष्ट झलक गई।

शिष्टाचार के दो चार शब्दों के बाद दोनों मित्र उठ कर चले गए।

मोहिनी देर तक उस धूल-धूसरित सड़क की ओर देखती रही।

× × ×

आज अस्पताल के उद्‌घाटन का विशद आयोजन हो रहा था। डा० मोहिनी बाला बड़ी व्यस्तता से दौड़-धूप कर रही

थीं, शहर के उच्च अधिकारियों को पार्टी दी गई, लम्बे-लम्बे भाषणों से जनता और गरीब प्रजा हर्षोत्फुल्ल हो उठी थी।

अस्पताल के सञ्चालक थे महेन्द्रप्रताप, अवस्था चालीस के लगभग। लम्बी-चौड़ी विशाल आकृति, गेहुआँ रंग, भव्य ललाट, उनकी फुर्ती और कार्य-पटुता का परिचायक था।

ओजस्वी भाषण के बाद एक सुन्दर फाउण्टेनपेन मिस मोहिनी बाला को भेंट किया गया।

प्रशंसा से अवनत मिस मोहिनी बाला ने हाथ बढ़ा दिया।

अचानक महेन्द्र की आँखें उन उज्ज्वल उंगलियों में पड़ी हुई अंगूठी से टकरा गईं...कलम छूट कर उनके हाथों से चिकने फर्श पर बिछल पड़ी।

अनमनी सी लेडी डाक्टर ने अपनी कुहनियाँ मेज के कोने पर टेक दीं। महेन्द्रप्रताप का सर चकरा उठा, वे अनमने से उठे और कलम लेकर मोहिनी के हाथों में देते हुए बोले—आशा है जनता और गरीब प्रजा आपको अपनी तकलीफों में हमेशा साथ पाएगी।

मोहिनी ने नमस्कार किया, इस बार उसकी आँखें ऊपर न उठ सकीं।

समारोह समाप्त हो गया था, रंगीन बत्तियों के बीच से मोहिनी डगमगाते पावों से अपने बङ्गले की ओर चली जा रही थी। महेन्द्र की दृष्टि अब भी उसका अनुसरण कर रही थी, मन्द गति से कार चली जा रही थी। महेन्द्रप्रताप ने राजेश्वर

का हाथ दबा कर कहा—तुमने देखा मोहिनी का कितना आकर्षक सौंदर्य्य है, उजले आनन पर मचलता हुआ यौवन...।

राजेश्वर ने खिलखिला कर कहा—हुश तुम भी क्या कहते हो। कम से कम ३४, ३५ की उम्र होगी उसकी, जब कि स्त्रियाँ विगतयौवना समझी जाती हैं।

राजेश्वर का उत्तर एक चोट की भाँति सुन कर महेन्द्रप्रताप ने कार तेज कर दी।

भव्य भवन का सजा हुआ कमरा था। पलंग पर लेटे हुए महेन्द्र की आँखों में मोहिनी की सुन्दर आकृति झाँक झाँक कर अतीत का एक भूला हुआ स्वप्न सजीव कर रही थी।

× × ×

ग्रीष्म की सन्ध्या अलसा रही थी, मोहिनी अस्पताल में मरीजों की जाँच कर रही थी, डाक्टर खन्ना और डाक्टर वर्मा उसकी मदद करते थे। सहसा एक मोटर आकर रुकी...ड्राइवर ने उतर कर अदब से सलाम किया और एक लिफाफा लेडी डाक्टर के हाथों में दे दिया—

सादे कागज के टुकड़े पर घसीटे हुए कुछ शब्द थे।

"मेरी स्त्री आसन्नप्रसवा है, बार बार फिट आ रहे हैं, डाक्टर सेन के साथ फौरन आइए।"

महेन्द्र प्रताप—

सिटी मैजिस्ट्रेट

मोहिनी ने क्षणभर सोचा...फिर जरूरी केस डा० खन्ना को देकर मोटर में जा बैठी।

लोहे के सुदृढ़ फाटक पर मिले घबराये-से महेन्द्र ! आँखें मिलीं, हाथ आगे बढ़ गए, मोहिनी केवल नमस्कार कर के आगे बढ़ गई गम्भीर सी !

उसके पाँव काँप रहे थे। हृदय बैठा जा रहा था, आँखें अपने आप डबडबाती जा रही थीं...संयोग–ऐसा विचित्र संयोग...घर का प्रत्येक कोना परिचित-सा लग रहा था और बरामदे में बैठी महेन्द्र की माँ ने किस दृष्टि से देख कर कहा—उमा, देख तो बड़ी बहू से कितनी मिलती सूरत है लेडी डाक्टर की !

सुन कर मोहिनी सिहर उठी और दृष्टि बचाती हुई रोगिणी के निकट आ गई। हृदय का अन्तर्द्वन्द्व बार बार उसके मन को विचलित कर रहा था...और कर्तव्य, एक डाक्टर का कर्तव्य... मोहिनी एक क्षण में सब कुछ भूल कर रोगिणी की सुश्रूषा में लग गई। कई मृत लड़कियों के बाद गृहवधू ने इस बार कुशलपूर्वक पुत्र प्रसव किया। आनन्द का स्रोत-सा बह चला। सफलता का श्रेय डा० मोहनी को मिला !

बच्चे का जन्मोत्सव जी खोल कर मनाया गया—कहीं नाच का प्रबन्ध था, कहीं विराट भोज का, घर का कोना-कोना स्वजन-परिजनों से भर उठा !

प्रसूतिगृह में कञ्चन अपने नवजात शिशु को लिए बैठी थी। शहनाई का मधुर स्वर उसके हृदय को उल्लसित कर रहा था,

समीपस्थ कुर्सी पर बैठी थी मोहिनी बाला। आँखें उसकी कौतूहल से प्रसूता के मुख पर लगीं लेकिन उन आँखों में केवल कौतुक ही न था, कुछ मुक्तावलियाँ भी और शायद थोड़ा विषाद भी।

अपने मानसिक संघर्ष को दबाती हुई मोहनी ने बच्चे को गोद में लेकर चूम लिया, हृष्ट-पुष्ट बालक उसके श्वेत आनन पर लेट कर किलक उठा। आत्म विभोर-सी मोहिनी बोली—यह बच्चा मुझे दीजिएगा? और कह कर वह जैसे अपने बचन पर लज्जित हो उठी।

गृहिणी मुस्कुराई—हाँ हाँ बच्चा तो आप ही का है। आप खुशी खुशी ले जाइए, लेकिन ठाकुर साहेब की दो दो शादियों में यह पहला लड़का पैदा हुआ है, इसका वे बहुत बड़ा मूल्य माँगेंगे।

मोहिनी ने कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देख कर कहा—अच्छा! तो आप उनकी दूसरी पत्नी हैं और पहली पत्नी...कहते कहते मोहनी का मुख विवर्ण हो उठा।

कञ्चन ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया बोली—कुछ वैमनस्य हो जाने के कारण उन्होंने अपनी प्रथम पत्नी का परित्याग कर दिया है।

मोहिनी बोली—क्या वे जीवित हैं।

कञ्चन ने कहा—कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का कहना है वे मर गईं, कुछ लोगों का कहना है वे ईसाई या वेश्या हो गईं। दोनों ही बातें सम्भव हो सकती हैं क्योंकि उनके मायके में पिता की मृत्यु के बाद सौतेली माँ के सिवा और कोई था नहीं।

यदि कोई मनोविज्ञान का पारखी होता तो वह सहज ही मोहिनी के मुख पर झलकते भावों को पढ़ लेता, लेकिन कञ्चन २५-२६ वर्ष की युवती होने पर भी उतनी चतुर न थी।

मोहनी एक द्रवित मुस्कराहट से बोली—साधारण वैमनस्य से पत्नी का परित्याग ? यह एक आश्चर्य-जनक बात है। नहीं, नहीं वह आप जैसी सुन्दर नहीं रही होगी।

लज्जित-सी कञ्चन बोली—नहीं ऐसी बात तो नहीं कही जाती है—वे इण्टर-मीजिएट में पढ़ रही थीं; और विवाह के पूर्व ही किसी प्रोफेसर से उनकी घनिष्ट मित्रता की बात सुन कर ही एक सन्देह उठ खड़ा हुआ।

मोहिनी का मुँह लाल हो उठा, बोली—क्या किसी स्त्री-पुरुष की मैत्री इतनी संदेह-जनक होती है कि वह सारा जीवन नष्ट करने का कारण बन जाए ?

कञ्चन बच्चे को सुलाती हुई बोली—पुरुष का हृदय संशय-शील होता है। वह स्त्री को अपने इतने निकट की चीज समझता है कि किसी भी पर पुरुष को अपने बीच में नहीं आने देना चाहता।

मोहनी कुछ अधिक गम्भीर हो गई—ओहो तो पुरुष क्या सर्वदा निर्दोष होते हैं। क्या कोई स्त्री अपने और पति के बीच में किसी स्त्री को आने देना पसन्द करती है ? लेकिन सामाजिक जीवन में पुरुष और नारी का क्षेत्र इतना तो अलग नहीं है कि वे कोई सम्पर्क रक्खे ही नहीं।

कञ्चन—नहीं यह तो स्वाभाविक बात है, लेकिन पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ इस पक्ष में स्वयं निर्बल हैं।

निर्बल बनाने वाले वे पुरुष ही तो हैं। तिरस्कृता स्त्रियाँ वेश्यालय या मिशन का आश्रय न लें तो कितने आत्मघात होंगे जिनकी गिनती नहीं।

कञ्चन ने सिर ऊँचा कर के कहा—मिस सेन! औरों को तो मैं नहीं कहती लेकिन राजपूत रमणो के लिए तो उसका सतीत्व ही अमूल्य रत्न है, युग-युग से इसका मूल्य क्षत्राणियों ने प्राणों पर आँका है।

मोहिनी जैसे किसी असह्य वेदना से छटपटा कर बोली—पर उस अमूल्य रत्न का गौरव कहाँ रहा जब कि प्रत्येक पल वह सन्देह की दृष्टि पर तौला जाए।

कञ्चन—बगैर किसी कारण के शंका नहीं की जाती। राजपूत रमणी का आदर्श रहा है तलवार या जौहर व्रत!

मोहिनी के मुख पर व्यंग्य की मुस्कान थिरक उठी—ओह आप तो मुगल साम्राज्य में पहुँच गईं...यह तो ब्रिटिश राज्य है जहाँ जौहरव्रत और शस्त्र चालन दोनों ही जुर्म है।

कञ्चन निरुत्तर रही। इस तर्क वितर्क से वह अब कुछ अलसा उठी थी, बोली—शायद दस बज रहे होंगे?

मोहिनी ने कलाई की घड़ी पर दृष्टि डाल कर कहा—हाँ अब देर नहीं है, यह सुबह तक की दवा मैं दिए जा रही हूँ। उसने अपनी पेटी खोलकर दवा बना दी—त्योंही महेन्द्रप्रताप सहास्य

कमरे में प्रविष्ट हुए और अनुरोध भरे स्वर में बोले—मिस सेन माफ कीजिएगा भीड़ भाड़ में आपका कोई सम्मान न हो सका, चलिए डिनर का वक्त हो गया।

मोहिनी के सुन्दर गोरे मुख पर स्वेद की बूँदें छलछला आई थीं, वह बोली—मिस्टर सिंह क्षमा कीजिएगा, इस वक्त मैं डिनर में शरीक न हो सकूँगी, मेरी तबियत अचानक खराब हो गई है, मैं घर लौटना चाहती हूँ। देखूँ क्या पापा चल सकेंगे।

महेन्द्रप्रताप ने विस्मित दृष्टि से देख कर कहा—लेकिन हम लोगों ने सोचा था प्यानो में आप प्रवीण हैं, २–१ चीजें सुनी जाएँगी, आपकी तबीयत...

मोहिनी का विरक्त स्वर कुछ कठोर हो उठा, बोली—मैं मनोरंजन की वस्तु नहीं हूँ ! और जल्दी जल्दी पैर बढ़ाती हुई वह उठ कर कमरे से बाहर हो गयी।

महेन्द्र ने एक दृष्टि पत्नी पर डाली जैसे पूछ रहे हों इस परिवर्तन का कारण।

कञ्चन स्वयं विस्मित थी—इधर दस बारह दिनों के बीच में उसने मोहिनी को जितनी विनोदप्रिय, नम्र और मिलनसार पाया था उसे आज के परिवर्तन पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था। अस्पताल के नीरस वातावरण में जहाँ कि रात-दिन जीवन मृत्यु का संघर्ष हो, रोगियों के आह कराह की ध्वनि हो, वहाँ कोमल हृदय भी पत्थर हो सकता है, वहाँ मोहिनी की भावुकता और कोमलता अब तक सजीव थी, उसे आश्चर्य था।

पति के प्रश्न का कोई समाधान उसके पास न था।

महेन्द्र मुड़े—बाहर आकर उन्होंने देखा—मोहिनी अपनी कार पर बैठ चुकी है और उसकी बगल में वृद्ध डाक्टर सेन भी बैठ रहे हैं। महेन्द्र ने विनम्र शब्दों में कहा—मिस सेन, ठहरिए न डाक्टर। तो आपने जो दवा दी है……

मोहिनी ने अनसुनी कर के कार बढ़ा दी।

प्रभात का झुटपुटा था—पक्षी नीड़ों से निकल चुके थे, अस्पताल के सामने महेन्द्रप्रताप की कार रुकी। वे उतर कर गेट के भीतर प्रविष्ट हुए। उन्होंने देखा—मोहिनी धीरे-धीरे टहलती हुई पुष्प-चयन कर रही है। एक ही रात में उसके मुख की कान्ति कितनी धूमिल पड़ गयी है, सम्भवतः रात भर जागरण से उनींदी आँखें अलसा रही थीं।

उन्होंने बढ़ कर नमस्कार किया—मोहिनी चौंकी, फिर युगल करों को जोड़ कर मृदु-मुस्कान से नमस्कार करती हुई बोली— कहिये कुशल तो है।

जी—महेन्द्र बोले, आपकी तबीयत कैसी है?

मैं...मैं तो इस वक्त बिल्कुल अच्छी हूँ! मोहिनी ने उत्तर दिया। दोनों हौज के किनारे कुर्सियों पर बैठ गये। महेन्द्र कुछ भावुकता से बोले—जिस सृष्टिकर्ता ने आपको इतना सुन्दर बनाया उसने आपका हृदय क्यों इतना कठोर बना दिया।

मोहिनी अभिज्ञता के साथ बोली—कठोरता? कठोरता कैसी मि० सिंह?

कठोरता पूछती हो ? तुमने मुझे पागल बना दिया है। अपने को छिपाना चाह कर भी तुम छिपा नहीं सको, मैं जानता हूँ तुम मोहिनी नहीं शीला हो।

मोहिनी के शुष्क ओठों पर कँपकँपी छा गई, वह कुछ उत्तेजित स्वर में बोली—लेकिन आप शायद नहीं जानते वह हिन्दू शीला कब की मर गयी ! अब तो मिशन की छाया में पली मैं एक ईसाई की लड़की हूँ। और विद्रूप की हँसी हँसती हुई बोली—और इतने दिनों बाद उस शीला के व्यक्तिगत जीवन से सम्पर्क रखने की आपको क्या आवश्यकता आ पड़ी।

शीला मनुष्य की दो अवस्था होती है, एक भूल की, एक पश्चात्ताप की। अपराधों का श्रेष्ठ प्रायश्चित्त पश्चात्ताप है। महेन्द्र का स्वर दीन हो उठा।

मोहिनी गम्भीर-सी बोली—मि० सिंह वह पश्चात्ताप किस काम का जिसमें मृत्यु की विभीषिका हो और जीवन का शाप हो !

हम मनुष्य हैं शीला, परिस्थितियों और संयोग पर हमें झुकना ही पड़ता है। और सम्भव है विधि का विधान भी यही रहा हो।

मोहिनी क्रुद्धा नागिन-सी फुङ्कार उठी—विधि का विधान ? परिस्थितियाँ ? और संयोग ? यह दलील उन लोगों के लिए है जिन्हें समाज के पैरों तले पिसना है, जो अकर्मण्य है ? पर जो मनुष्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हो, सम्पत्तिशाली हो, समाज

विधान की बागडोर जिसके हाथ में हो वह यदि मिथ्या अपवाद से अपनी विवाहिता पत्नी का परित्याग कर दे बिना सत्यासत्य का निर्णय किये, तो क्या वह भी विधि प्रवञ्चना का शिकार माना जायेगा।

ठहरो मोहिनी, उत्तेजित न हो, सुबह का भूला अगर शाम को लौटे तो वह भूला नहीं कहाता ! मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ ! तुममें समाविष्ट नारीत्व आज भी मर नहीं मिटा है, मुझे आशा ही नहीं विश्वास है......?

मोहिनी हँसी—आशा-विश्वास लेकर भी आज आप मोहिनी को कुलवधू की दृष्टि से अपनाने आये हैं, आपने अबतक नारी को विनीत अवलम्बहीन अबला के रूप में पाया है, सम्भवतः इसीसे आप ऐसा साहस कर सके, पर क्षमा कीजियेगा नारी और पुरुष की सृष्टि एक ही जगह से हुई है—वही आत्माभिमान, वही स्वावलम्बन, वही शक्ति नारी में भी है जो पुरुष में ? वह ठोकर खा भी सकती है और ठोकर दे भी सकती है। और जिसे आप सुबह शाम का भूला कहते हैं, वह समय कब का निकल चुका है। १४ वर्ष बाद भी आप सुबह शाम का भूला कहते हैं। मेरी क्षमा से ही अगर आपको शान्ति मिलती हो तो जाइये मैं क्षमा करती हूँ ?

मोहिनी का मुख तमतमा आया, झल्लाईसी वह उठकर खड़ी हो गई।

निकट आकर महेन्द्र ने शीघ्रता से उसकी कलाई अपनी

सबल मुट्ठियों में दबा कर कहा—ठहरो शीला मुझे और कुछ कहना है।

पलक मारते यह हो गया। मोहिनी की निश्चेष्ट ठंडी उँगलियाँ एक क्षण महेन्द्र के हाथों में रहीं, सहसा उसने झटक दिया—ठहरिये ! इसका अधिकार बहुत पहले ही आपने खो दिया, जो कुछ कहना हो कहिये, मुझे अधिक समय नहीं !

महेन्द्र क्षणिक हतप्रभ से खड़े रहे, फिर आगे बढ़कर बोले—शोला पागलपन न करो। पति-पत्नी का सम्बन्ध जन्म जन्मान्तर का होता है......

मोहिनी हँसी, व्यङ्गपूर्ण ढीले स्वर में बोली—मि० सिंह आप पुरुष हैं, शायद आपमें रसिकता की मात्रा अभी तक होगी, लेकिन मैं ३२ बसन्तों को पार कर चुकी हूँ, ये रसमयी बातें किसी युवती से कहनी चाहिए थीं, जो आपकी इन रसपूर्ण बातों को सुनकर अपने को आपके हाथों समर्पण कर देती।

हँसती हुई वह साड़ी का पल्ला गले में लपेट कर बेत की बेञ्च के एक किनारे बैठ गई।

अचानक वृद्ध डा० सेन आते हुए दिखाई दिये—महेन्द्र ने एक मिनट तक मोहिनी के मुख पर दृष्टि गड़ाकर देखा और मुड़ गये !

उसी बेञ्च के एक ओर बैठते हुए मि० सेन बोले—इतनी सुबह-सुबह तू क्यों घूम रही है बेटी, रात तुझे कितना तेज बुखार था।

नन्हीं बालिका-सी मचल कर मोहिनी बोली—अब तो मैं बिल्कुल अच्छी हूँ पापा! भीतर कमरे में गर्मी तो बहुत थी।

वृद्ध ने स्नेह पूर्वक ललाट पर हाथ रखकर कहा—ओस से भींग रही है। मेरी बेटी कितनी पागल है!

सच पिताजी?

सहसा मोटर जाने की आवाज सुन कर वे चौंककर बोले- इतनी सुबह कौन आया था?

मैजिस्ट्रेटसाहब की कार थी—कल मेरी घड़ी वहाँ छूट गई थी न? मोहिनी उत्तर देकर कुछ गम्भीर हो गई।

अपने नियत समय पर मोहिनी फिर कञ्चन को देखने गई। महेन्द्रप्रताप ने देखा वही सुन्दर सहास्य मुखमण्डल है, वही ओठों पर थिरकती मधुर मुस्कान है! उसने महेन्द्र को देखकर भी अनदेखा किया, कञ्चन को दवा देकर वह इस प्रकार बाहर निकली जैसे घटित घटना का उस पर कोई असर नहीं पड़ा हो।

रेलिङ्ग पर खड़े महेन्द्रप्रताप ने एक लम्बी साँस ली।

मोटर ड्राइव करती हुई मोहिनी सोच रही थी अधिक आकर्षण रूप में है या प्रेम में?

त्याग का सौदा

तृतीया का चाँद अपनी पूर्ण ज्योत्स्ना के साथ खिल उठा था। जब शुभा उठकर कमरे के द्वार पर आई तब उसने देखा, घर भर रोशनी कम हो गई है। उसने अपने कमरे में बिजली का बटन दबाकर रोशनी की, तब देखा कमरे के एक ओर थाली में ढँका कुछ रखा है, शायद खाना होगा। उसने विरक्ति से मुँह फेर लिया, भूख उसे बिल्कुल न थी, लेकिन प्यास के मारे वह बेचैन हो रही थी, पानी लेकर लौटते लौटते उसे अपने बच्चे की याद आई। उस आठ महीने के शिशु को वह दो दिन से भूली बैठी थी, उसके लिए उसका मातृ हृदय उस वक्त तड़प उठा, वह पलंग के एक कोने पर पड़ रही। उसके हृदय में घृणा और वात्सल्य का साथ साथ उदय हुआ।

वह नारी थी, एक निरीह नारी, जो माता पिता और स्वजन संबंधियों की इच्छा पर एक पुरुष के हवाले कर दी गई थी, जो व्यक्तित्व से संपन्न होते हुए भी हृदयहीन था—वैसे इस विस्तृत परिवार में कौन नहीं था, सभी थे, पर शुभा जैसी भावुक नारी के लिए सभी कुछ शून्य था—एक बिन्दु मात्र !

और उस बिन्दु के ऊपर पति सुभाष को स्थिर पाकर वह हताश सी हो जाती। एक पाषाण हृदय की स्मृतियों को लेकर क्या वह इस १८ वप की उम्र को उसी घर में खुशी से बिता सकेगी? इसके सिवा और उपाय भी क्या था, वह परित्यक्ता पत्नी ही न थी बल्कि एक शिशु की माता भी थी। उस पाषाण हृदय ने इस भावुक नारी को मातृत्व के जाल में उलझा कर छोड़ दिया था। पति से विमुख होकर भी वह बच्चे से कैसे मुँह मोड़ सकती थी।

उठकर वह बच्चे की खोज में चली। उसे अच्छी तरह मालूम था ननद विभा को छोड़कर वह और किसी के पास रहता भी नहीं, इसलिये वह सीधी विभा के पलंग के पास जा पहुँची। सभी सो रहे थे। विभा के पास बच्चे को न पाकर वह सब की चारपाई देख आई, कहीं भी उसका पता न था, तब विभा को जगाकर पूछा—बीबी, बच्चा कहाँ है?

नींद में मतवाली विभा बोल उठी—मुझे, मुझे तो नहीं मालूम, भाभी, खोज लो, यहीं कहीं होगा।

शुभा घबराई। घर की औरतें सभी यहीं थीं, बाहर का दरवाज़ा खुलवा कर उसने पुछवाया, महेन्द्र ने आकर कहा—"वहाँ भी नहीं है, माँ से पूछिये।

अब केवल एक जगह रह गई थी—वह ऊपर सुभाष का क़मरा। शुभा वहाँ जा कैसे सकती थी। वहाँ बच्चे के होने की उसे संभावना भी न थी। आज सुभाष ब्याह कर के लौटा

है—कब संभव था कि वह इस अभागी नारी के बच्चे को अपने क्रीड़ा कुंज में ले जाएगा। पर शुभा अधिक सोच नहीं सकी, वह ऊपर चली गई, सुभाष के कमरे के दरवाजे बन्द थे और खिड़कियाँ खुली थीं, पलंग पर सुभाष सो रहा था, बे-खबर। चन्द्रकला बच्चे को गोद मे लिये सोफे पर बैठी थपकी दे रही थी, बच्चा बार बार चिहुँक उठता था, बीच बीच में रो भी पड़ता था, चन्द्रकला उसे जबरदस्ती सुलाने की चेष्टा कर रही थी,—मुँह उसका खुला हुआ था—गोटे की टँकी, पीली साड़ी, माँग में सिन्दूर की रेखा और ललाट पर अरुण बिन्दी, छोटा-सा सुन्दर मुख दीप्त हो रहा था। ठगी-सी शुभा खड़ी रह गई, बच्चा बार बार चिहुँक उठता था, शुभा को लगा, नारी के प्रति नारी को घृणा कैसी!

वह भी तो मेरी ही जैसी एक और बैठी है। एक पराए बालक को छाती से लगाए, फिर उसका पराया होकर भी जो मेरा अपना है, क्या उसे लेकर मैं नहीं रह सकती—रहूँगी। रहूँगी।

ऐसा दृढ़ निश्चय करके उसने नाखून से दरवाजे पर खुटखुट की, चन्द्रकला उठ आई, बच्चे को वैसे ही गोद में लिए लिए पूछा—कौन है?

मै हूँ, बच्चे को लेना चाहती हूँ?—शुभा ने विनीत कंठ से मन्द स्वर में कहा।

नौकरानी हो बच्चे की?—चन्द्रकला प्रश्न कर बैठी।

शुभा चुप रही। उसने हाथ बढ़ा दिया। तब चन्द्रकला आदेश के स्वर में बोली—तुम ओस के भींगे कपड़े पहने हो यह चादर ढक कर इसे अम्मा के पास दे आओ।

शुभा ने लौटते लौटते सुना···सुभाष का स्वर, तुम अभी तक जाग रही हो, आओ अब सो रहो।

शुभा के अंग-अंग शिथिल हो रहे थे, सुभाष के शब्दों ने उसके शरीर में कंपन डाल दिया—ओह सुभाष ने और भी कभी ऐसे शब्द कहे हैं।

शुभा भी तो नारी थी, पत्नी बन कर आई थी, पर उसके लिए सुभाष ने कभी भी इतना स्नेहपूर्ण आग्रह नहीं किया था, अकसर शुभा दिनभर के काम काज के बाद थक कर सो रहती थी तब सुभाष आते ही झल्ला उठता था, यहाँ तक कि शुभा को सफाई देने तक का मौक़ा नहीं देता था।

(२)

सुबह सुबह उठ कर शुभा ने जलपान तैयार किया, ब्याह के बाद से ही सुबह-शाम का जलपान घर भर का वही तैयार करती थी। पाक कला में वह निपुण भी थी और इस पाक कला का प्रभाव भी सब पर था, औरतें, बूढ़े, बच्चे, देवर, ननद सभी उसे हृदय से चाहते थे, रसोई की देख-रेख भी उसी पर निर्भर थी। यदि इसका प्रभाव नहीं पड़ा किसी पर तो सुभाष पर।

चाय की केटली स्टोव पर रखे शुभा बैठी हुई थी, तब

तक बच्चों ने उसे घेर लिया, वह सब बच्चों का नाश्ता बाँटने लगी। छोटी देवरानी भी मदद के लिए आ गई, जो लोग अभी तक तैयार न थे उन लोगों का नाश्ता छोटी बहू दया को सहेज कर शुभा ने कहा—तुम जरा बच्चे के पास चली जाओ मैं तब तक नहा लूँ, कहीं वह गिर न पड़े।

जीजी आप की तबियत ठीक नहीं है तो रहने दीजिये मैं ही रसोई का काम देख लूँगी!

नहीं नहीं, तुम उसी के पास चली जाओ। दया चली गई।

ज्योंही वह बाहर निकली, सास का स्वर उसे सुनाई दिया—अरी विभा नई दुलहिन को नाश्ता दे आई या नहीं?

क्षणभर वह किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी खड़ी रही, तब लौट पड़ी। एक थाली मे नमकीन, मिठाइयाँ और चाय की प्यालियाँ रख कर ऊपर ले चली।

चन्द्रकला स्नान कर के खड़ी थी। बाल सँवारते सँवारते कुछ गुनगुना रही थी। शुभा थाली टेबुल पर रख कर लौटने लगी, तब चन्द्रकला घूम कर बोली—सुनो, तुम्हीं तो रात बच्चे को ले गई थी?

हाँ मै ही थी—शुभा बोली।

जरा दे जाना उसे। और सुनो, नाश्ता इतना क्या मैं अकेले करूँगी? बहुत है वे तो नीचे गए—कहते कहते चन्द्र-कला के ओठों पर लज्जापूर्ण मुस्कान छा गई।

शुभा विवर्ण पड़ गई, बोली—अच्छा मैं बीबी को भेज देती हूँ।

और सुनो तो, तुम्हारा नाम क्या है, बच्चे को दे जाना —चन्द्रकला ने आदेश दिया।

शुभा कुछ बोले बगैर लौट गई।

बीबी चाय तो ठंडी हो गई—चन्द्रकला बोली।

मैं पी चुकी हूँ। भाभी गलती से दो प्याले दे गई थी—विभा चाय फेंकती हुई बोली।

नहीं नौकरानी लाई थी उसी की गलती है।

नौकरानी? तुम किसे कहती हो भाभी, वह नौकरानी नहीं, भाभी थी। उन्हीं को तो मैंने ऊपर आते हुए देखा था।

चन्द्रकला कुंठित-सी होकर बोली—पर वह तो...।

विभा गम्भीर-सी पड़ गई, बोली—तुम भी तो स्त्री हो भाभी, सोचो तो सुभाष भैया की इतनी उपेक्षा पर भी वे वज्र बन कर घर भर की सेवा में लगी रहती हैं, यही क्या कम है?

तो...तो क्या वही उनकी पत्नी है? चन्द्रकला आश्चर्य से बोली। अपराधिनी-सी।

हाँ सुभाष भैया की वे कभी अपनी न बन सकीं, लेकिन घर भर तो उन्हीं पर निर्भर है, उनके बिना घर का काम ही नहीं चल पाता। इधर एक महीने के लिए मैके गई थीं, मा को तकलीफ होने लगी, महेन्द्र को भेज कर उन्होंने बुलवाया, तब कहीं सब ने सन्तोष की साँस ली।

मुझे उनके पास ले चलोगी बीबी—मैंने भ्रम में पड़ कर उनका तनिक भी आदर नहीं किया, मैं माफी माँगूँगी।

क्यों नहीं, चलो वे उधर के खंड में रहती हैं।

चन्द्रकला तुरन्त खड़ी हो गई।

भीगे वस्त्रों में लौट कर देखा शुभा ने, चन्द्रकला उसके कमरे में घूँघट डाले खड़ी थी। वह विस्मित हो उठी।

चन्द्रकला उसके पैरों पर झुक कर बोली—जीजी पहचान न सकी, अनजान में ही जिस अपराध की सृष्टि कर बैठी हूँ उसके लिए माफी चाहती हूँ।

शुभा क्षण भर खड़ी रही, तब दोनों हाथों से उठा कर बोली—उठो चन्द्रा, यह मेरे जीवन में बहुत मालूमी-सी बात है।

चन्द्रकला भारी कंठ से बोली—मैं ही आप लोगों के बीच में व्यवधान पड़ गई जीजी...।

नहीं नहीं, उस समय उनका कर्तव्य ही यह था कि मौत के द्वार पर खड़े मित्र के चित्त को शान्ति देते, लेकिन कौन जाने विधाता का विधान ही ऐसा रहा हो, यह मेरा अदृष्ट था।

शुभा ने बच्चे को चन्द्रा की गोद में देकर कहा—लो यह अब तक सो रहा था, ले जाओ।

चन्द्रकला लौट गई।

(३)

सुभाष के जीवन में चन्द्रकला घटना वैचित्र्य से ही आई, शुभा से वह सन्तुष्ट न था। यह ठीक है, पर दूसरा विवाह एक

पत्नी पुत्र के रहते, सम्भव है वह कभी न करता। ५ ही ६ दिन पहले वह अपने मरणासन्न अभिन्न मित्र ब्रजराज का तार पा कर उसे देखने कलकत्ते गया था, जब वह वहाँ पहुँचा, ब्रजराज के जीवन के इने गिने क्षण रह गए थे। उसने सुभाष के हाथ में अपनी मातृ-पितृ-हीन अनाथिनी बहन का हाथ देकर कहा—सुभाष और बातों का समय अब नहीं रहा, चन्द्रकला को तुम्हें सौंपता हूँ, उसे ग्रहण करो और किसी के पास वह सुखी नहीं रहेगी। बोलो प्रतिज्ञा करते हो, इस वक्त इनकार करके मुझे चिन्ता में मत डालना, इसीलिये तुम्हें तार देकर बुलाया था। चन्द्रकला पढ़ी लिखी है, सुन्दर है, हर तरह से तुम्हारे उपयुक्त होगी।

ब्रजराज ने अपनी बात तो कह डाली पर सुभाष की बातें सुनने का उसके पास मौका नहीं था।

और सुभाष मित्र के इस अनुरोध को अन्तिम समय में इनकार कर ही क्या सकता था।

ब्रजराज की मृत्यु के चौथे दिन जब सुभाष चन्द्रकला को ले जाने के लिए तैयार हुआ तब मुहल्ले, टोले, दूर के कुल कुटुम्बी सभी ने कहा—क्वारी लड़की ऐसे किस तरह जा सकती है, ब्याह करके ले जाओ।

विवश हो सुभाष को ब्याह करना पड़ा। जब ब्याह करके लौटने लगा तब तार से उसने खबर दी। इस खबर से और लोग चाहे कौतूहल एवं आश्चर्य में पड़ गए हों लेकिन शुभा एकदम निष्प्राण हो उठी।

× × ×

मुख पर मुस्कान और हाथ में ढेर की ढेर चीजें समेटे चन्द्रा शुभा के सिरहाने खड़ी कह रही थी—जीजी कब तक सोओगी, ७ बज रहे हैं।

अलसाई आँखें खुलीं, करवट लेकर शुभा बोली—बच्चे की तबियत ठीक नहीं है, रात भर से जाग रही हूँ, अभी तो सोई हूँ, तुम जरा दया दुलहिन को मेरे पास भेज देना।

सारी चीजें पयताने की ओर रखकर चन्द्रा बच्चे के पास बैठ गई, वह जाग पड़ा।

शुभा उठकर बैठ गई—विस्मित-सी बोली—इतने डब्बे शीशियाँ यह सब यहाँ क्यों उठा लाई!

ये खाली कागज के डब्बे हैं; तुम सोओ जीजी, बच्चे को मैं ले जाती हूँ। उसे लेकर चन्द्रा कमरे के बाहर हो गई।

शुभा सो रही, सुभाष के वे राशिकृत उपहार उसके पैरों के नीचे पड़े सिर धुनते रहे। जब वह सोकर उठी १० बज रहे थे। उसने उन डब्बों को खोल कर देखा—रेशमी ब्लाउज, क्रीम, सेन्ट, विलायती हेयर आयल की शिशियाँ थीं।

सोच गई वह—चन्द्रा कितनी भाग्यवान और कितनी पागल है।

(४)

सुभाष को लगता वह बहुत बड़ा अन्याय कर बैठा है। सम्भवतः शुभा अपने अधिकारों के लिए लड़ती तो उसे इतनी मानसिक ग्लानि न होती। पर वह तो एकदम मूक बन बैठी

है। पहले की तरह वह अब भी सुभाष के सब काम कर देती है। समय पर आफिस के कपड़े, पान, जलपान, सभी दुरुस्त रहते हैं। सामना पड़ने पर शुभा आँखें बचाकर निकल जाती हो वह भी नहीं, अकसर वह दो एक बातें भी कर लेती है। सुभाष के बायें हाथ में अकसर दर्द हुआ करता है। शुभा के पास होम्यो-पैथिक का बाक्स है वही दिया करती थी दवा, अब भी जरूरत पड़ने पर वह दवा खिला जाती है। पर वह अब पहले की शुभा नहीं रह गई।

पहले वह पति की उपेक्षा पर अवसर पाकर कितनी ही बातें उलट फेरकर कह जाती, अब उस ओर उसका जैसे ध्यान नहीं जाता। चन्द्रा नहीं समझती वह अभी भोली भाली बनी रहना चाहती है, पर यह कै दिन चलेगा? शुभा के खर्च के लिए कुछ रुपये अलग कर देने की सूचना देने के लिए वह कई दिन से अवसर खोज रहा था, भविष्य के पृष्ठ उसके सामने बड़े तीखे तीखे खुलते जा रहे थे।

सोई निस्तब्ध रात्रि में चल पड़ा सुभाष शुभा के कमरे में, घड़ी ने १ बजने की सूचना दी।

शुभा निर्निमेष बैठी थी। गोद में रुग्ण शिशु, आँखों में अपार करुणा, असीम चिन्ता लिए बैठी बैठी वह जाने किस दुनिया में विचर रही थी। सुभाष कब तक खड़ा रहा यह न शुभा जान सकी न सुभाष। बच्चा जग पड़ा तब शुभा पीछे फिरी, सुभाष अब तक खड़ा था, विस्मित-सी वह रह गई।

सुभाष बैठ गया, बोला—बच्चा बीमार है तुमने कहा क्यों नहीं ?

किससे कहती ?

क्यों मैं तो था ?

सभी थे, फिर यह क्या कहने की बात थी, कौन नहीं जानता ?

दवा दी है ?—सुभाष ने पूछा।

दी है अपनी ही दवा। फायदा भी है, बुखार कम पड़ गया है, साँस अब तक फूल रही है। कल तक शायद कम पड़ जाय।

पड़ गया। तुम अकेली ही रात भर जागती हो, किसी को बुला क्यों न लिया ?

किसे बुलाती ?

अभी तो तुमने कहा है, सभी तो हैं ?

शुभा की आँखों में चमक आ गई, बोली—कहा तो है पर उन 'सभी' लोगों का नाता किस पर निर्भर रहता है यह भी जानते हो ?

सुभाष निरुत्तर रह गया और शुभा बच्चे को लिए लिए जमीन पर लेट गई।

सुभाष अस्वस्थ-सा होकर बोला—तुम्हारे लिए २० हजार रुपया मैं अलग जमा कर देता हूँ और २५ रुपया महीने तुम्हारे ऊपरी खर्च के लिए दिया करूँगा, इतना तो शायद तुम्हारे लिए कम न होगा।

लेटी लेटी बोली शुभा—कुछ नहीं चाहिए मुझे, तुम मेरी चिन्ता क्यों करते हो ? मैंने तुमसे जो चीज पाई है वह इतनी अमूल्य है कि उसकी तुलना संसार की किसी भी वस्तु से नहीं की जा सकती। बस, और अब तुमसे पाने या चाहने का अधिकार मुझे नहीं रहा है।

और उन ढकी पलकों में राजरानी-सी शुभा सुख की निद्रा में मग्न हो गई।

नारी के त्याग पर, इस सन्तोषपूर्ण मनोवृत्ति पर, वह पाषाण-हृदय पिघल उठा—शुभा का सर पति की बाहों में था।

नारीत्व

अपर्णा के विवाहित जीवन के चौदह वर्ष बीत चुके थे; पति की एक अस्पष्ट छाया उसके हृदय में अब तक आती रही है, वह भी समय पाकर धीरे-धीरे मिटती जा रही है।

पर विगत चौदह वर्षों से ललाट पर जो अरुण बिन्दु और सघन केशों के बीच सिन्दूर की एक अरुण रेखा वह भरती आई है, वही सम्भवत: उस मिटती छाया को एक बार रोज सजीव कर देती है।

व्रत-उपवास, सौभाग्य सूचक वस्त्राभूषण धारण करने की वजह से अक्सर पति के विषय में लोगों ने उससे प्रश्न किया है, और उस प्रश्न के उत्तर में केवल लज्जित होकर उसने मुँह छिपा लिया है; यही नहीं वरन् घण्टों के लिए वह मन ही मन विक्षिप्त-सी हो उठती है—उसकी उस उदास मुखमुद्रा को देखकर कितनी ही बार माँ का हृदय काँप उठा है। बेटी के भविष्य में अन्धकार की यह रेखा खींच देने का उत्तर-दायित्व उसी पर तो है।

यौवन का आँगन अपर्णा ने पुस्तकों और परीक्षाओं के

बीच पार किया—शीत की रातें, बरसात की सन्ध्या और ग्रीष्म की चाँदनी उस पर असर न डाल सकी हो यह बात नहीं, किन्तु पुस्तकों के नीरस पृष्ठों में अपने को खो कर उसने उन मादक क्षणों पर विजय पाई है।

पति से परित्यक्ता होकर भी उसे उन पर क्रोध न था, माँ पर भी उसे दया हो आती, फिर भी कभी-कभी वह माँ से पूछ बैठती——सब कुछ जानते-समझते हुए भी तुमने ऐसा क्यों किया माँ ?

माँ के शुष्क नेत्र सजल हो उठते—सन्तान के शुभ के लिए, भविष्य के लिए माँ क्या नहीं करती बेटी ?

बहुत कुछ पूछने की इच्छा रहते हुए भी माँ के अश्रुपूरित नेत्र देखते ही अपर्णा स्वयं सङ्कुचित होकर कहती—रोओ नहीं माँ, मुझे तुम पर गर्व है। सन्तान के प्रति माता को जो देन है उसे तुमने दिया। विधि का विधान तो उलटना तुम्हारा काम नहीं है !

और पति की उस मिटती हुई स्मृति को ही सजीव करने के लिए वह किसी एकान्त में जा बैठती—परित्याग के उस अन्तिम क्षण में वे केवल इतना ही तो कह सके थे—प्रतीक्षा करना, शायद समय आये और हम दोनों फिर मिल सकें !

किन्तु वे प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिनते-गिनते आज १४ वर्ष व्यतीत हो गये और वह 'समय' आजतक नहीं आया। और पति आज सफल डाक्टर है, पत्नी-पुत्र, धन-धान्य से पूर्ण !

एम० ए० पास कर आज अपर्णा स्थानीय कालेज में प्रिन्सिपल है। माँ-बेटी की छोटी-सी गृहस्थी सुख-दुख के भँवर में डगमगाती हुई भी वर्षों को पार करती जा रही है।

× × ×

आज दुनिया बदल गई है, समाज की आँखें भी बदल गई हैं। तू फिर विवाह कर ले, तेरी माँ तुझसे यही चाहती है अपर्णा !

पुस्तकों में उलझी अपर्णा नेत्र ऊपर करके कहती—

क्या कहती हो माँ ? सम्भ्रान्त कुल की 'कुलवधू' बनाकर आज तुम यह कैसी 'माँग' कर रही हो ? सिन्दूर की इस सीमा को मैं लाँघ सकूँगी...नहीं नहीं, तुम्हारी अपर्णा तुम्हारे लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देगी लेकिन इस माँग की पूर्ति नहीं कर सकेगी। मेरे सिन्दूर की यही रेखा क्या यह पुकार कर नहीं कहती—तेरा पति है, स्वजन सम्बन्धी हैं, दो दो कुलों की लाज तेरी आँचल में बँधी हैं, तेरा एक अपना घर है, अपना न होते हुए भी एक अपना प्राणी है जिसका चिह्न आजतक तेरे मस्तक पर दीप्त है और जो प्रत्येक की दृष्टि में तेरे लिए एक गौरव का स्थान प्राप्त करता है।

तो फिर एक बार मुझे जाने दे; मैं अजित के पैरों पड़ कर उसे मनाऊँगी, अपने अतीत के प्रमाण इकट्ठे करके दूँगी, अपने अतीत की कालिमा तेरे भविष्य पर से धो डालूँगी।

नहीं-नहीं माँ, यह नहीं होगा—अपर्णा जबतक जिएगी अपने स्वत्व के साथ, स्वाभिमान के साथ। नारी होकर नारीत्व

का यह अपमान करने को तुम कैसे सोचती हो माँ ? पति नारी का सम्बल है, गौरव है, सौभाग्य है, इसे मैं भी मानती हूँ, लेकिन पत्नीत्व से उठ कर नारी ही मातृत्व का पद पाती है—उस स्थान पर पुरुष से नारी की महत्ता अधिक है। उसका अपमान मैं अपने लिए नहीं होने दूँगी।

तब तू ही एक बार अजित से क्यों न मिल ?

माँ ! अपर्णा की आखें चिनगारियों-सी जल उठीं—बचपन से आत्मविश्वास, दृढ़ता और स्वाभिमान का पाठ पढ़ा-कर आज क्या तुम मुझसे यही आशा करती हो ? मैं मानती हूँ समाज की उपेक्षित नारी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है, किन्तु उसमें निहित मातृत्व-वात्सल्य की देन तो उपेक्षित नहीं थी। दोष तुम्हारा नहीं। उस अतीत पर झूठ का आवरण डाल कर तुमने चाहा तुम्हारी बेटी उच्चकुल की कुलवधू हो। और आज उसी से तुम यह कैसी आशा कर रही हो यह जानते हुए भी कि पति के निकट पत्नी का क्या स्थान है ?

माँ उठ गई। हठी बेटी के सामने उसे हमेशा हार खानी पड़ी है।

× × ×

गोधूलि की एक धूमिल सन्ध्या को अजित उसी द्वार पर आकर रुका—जञ्जीर की खड़खड़ाहट सुनते ही माँ ने द्वार खोला—देखा चिरकाल-प्रतीक्षित अतिथि झुक कर उसके पाँव छू रहा है।

अजित ने देखा अपर्णा के दोनों कपोल आसुओं से भींग उठे हैं। उसने अपर्णा के प्रकम्पित शरीर को अपनी बाँहों पर रोककर कहा—'मैं भी तो तुम्हारा ही हूँ!'

अपर्णा ने कुछ उत्तर न दिया। किन्तु बालक के इस स्पर्श की अनुभूति के साथ चिरकाल का सञ्चित उसका स्वाभिमान गलकर बहा जा रहा था और वह अतीत की ओर लौटी जा रही थी। मानो आज वह उसी अपने १४ वर्ष पूर्व के सुखद संपन्न दांपत्य जीवन में ही है।

स्वजन-परिजनोंका परिचय कराया, केवल अशोक को उसके पास नहीं ले गई। शाम को सास ने प्रेमा को बुलाकर कहा—तुम मेरे नीचे के कमरे में आ जाओ, नई बहू ऊपर ही रहेगी।

तनिक मुस्करा कर प्रेमा ने कहा—मुझे मालूम है। और अपनी छोटी-मोटी जरूरत की चीजें लेकर वह नीचे के कमरे में आ गयी।

आलोक बाबू पिछले साल डाक्टर हुए थे; अनुराधा भी दो साल डाक्टरी पढ़ चुकी थी। यहीं दोनों का परिचय हुआ था और यहीं धीरे-धीरे एक प्रगाढ़ सूत्र में बँधने के लिए दोनों बाध्य भी हुए। अस्तु, अनुराधा पढ़ाई पूरी न कर सकने पर भी डाक्टर पति से अपने को कम न समझती थी। साफ हवा, साफ कमरे, सुन्दर वस्त्र-विन्यास की जितनी कलात्मक उपयोगिता उसे मालूम थी उतनी शायद आलोक को भी नहीं।

रूढ़िवादी पुरानी लकीर पर चलने वाले इस घर में एकदम नवीनता ला देना अनुराधा के ही वश की बात थी; अन्यथा प्रेमा तो क्या, आलोक भी उसमें परिवर्तन न ला सका था। इसलिए इस नवीन पत्नी की रुचि को लेकर आलोक को कई दिन भटकना जरूर पड़ा—मेज-कुर्सियाँ बाहर के लिए भले ही थीं, भीतर स्त्रियों को न इनकी आवश्यकता थी न शौक। लेकिन अनुराधा ने दूसरे ही दिन एक लम्बी सूची बना डाली—मेज-कुर्सी, फूलदान, शीशे, पर्दे-गद्दे, जाने कितनी अण्ट-सण्ट चीजों की फेहरिस्त लेकर आलोक बाबू कई दिन तक चीजें जुटाने में व्यस्त रहे। पत्नी की रुचि के कारण कभी-कभी उन्हें एक ही

चीज के लिए कई बार हैरान होना पड़ा, इसलिए एकाध बार उन्हें प्रेमा से हमदर्दी और सहानुभूति भी हुई—पाँच-छः वर्ष हो जाने पर भी प्रेमा ने कभी किसी सधारण-सी चीज के लिए पति से फर्माइश तो क्या अनुरोध तक न किया था; लेकिन यह हमदर्दी एक क्षण से अधिक उनके मस्तिष्क में टिक न सकी—प्रेमा-सी स्त्री को लेकर एक सफल गृहस्थ होने की आवश्यकता उन्हें उतनी न थी जितनी नवीन अप-टु-डेट रहन-सहन की स्त्री के साथ रहने की। पुरानी संस्कृति में पली प्रेमा कभी उनके उपयुक्त पत्नी न बन सकी थी न बन पाती—वह साड़ियों के रङ्ग का चुनाव नहीं कर सकती, मित्रों के बीच निकलकर हँस बोल भी नहीं सकती, सभा-सोसाइटियों या चाय-पार्टियों में भाग नहीं ले सकती; विज्ञान, दर्शन किसी भी विषय पर तर्क तो क्या बोल भी नही पाती। दिनभर का थका आलोक जब लौटता, प्रेमा को अपनी गृहस्थी में, बच्चे में व्यस्त पाता। माँ वृद्धा थीं; घर की व्यवस्था प्रेमा ही करती आई थी, इसलिए आलोक को थोड़ी फिक्र भी हुई। लेकिन दो ही दिन बाद उन्होंने देखा, रुपये का बक्स और खर्च की बही अनुराधा के हाथ में आ गयी। तालियों का गुच्छा तकिये के सिरहाने जगह पा गया। तब तनिक स्वस्थ हो कर उन्होंने पूछा—ये सब झंझट बहुत जल्द उठा लिए तुमने !

कुछ रूखे-से स्वर में अनुराधा बोली—झंझट क्या मैंने खुद उठा लिए—जीजी सब छोड़कर अपने आप चली गईं; तब मैं करती ही क्या ?

जीजी ? आलोक ने आश्चर्य से कहा।

हाँ हाँ, जीजी, प्रेमा जीजी को ही मैं कह रही हूँ। वे आज सुबह की गाड़ी से अपने घर चली गईं—अशोक भी उनके साथ ही चला गया।

आराम का निश्वास लेते हुए आलोक कोच के सहारे उठँगकर सोचने लगा—प्रेमा-सी अशिक्षिता नारी इस शिक्षिता अनुराधा के हृदय में जीजी का ऊँचा स्थान पा कैसे गई।

पति के इस चढ़ते-उतरते मुख की भाव-भङ्गिमा पर दृष्टि स्थिर करके अनुराधा बोली—मैं कहती हूँ, जीजी खुद तो चली ही गईं लेकिन अशोक को क्यों लेती गईं ? आखिर अपना घर रहते हुए वह पराये आश्रय में क्यों पले ?

लेकिन घर तो अब तुम्हारा है अनु, प्रेमा का नहीं।

मैं समझी नहीं आपका यह न्याय, जीजी के साथ भी तो तो आपका ब्याह हुआ था ?

हुआ तो था, लेकिन प्रत्येक विवाह में प्रेम स्थान पा लेता हो, ऐसा तो नहीं अनुराधा।

क्यों नहीं होता, क्या जीजी से तुम ने कभी प्रेम नहीं किया था ?—पूछा अनुराधा ने।

नहीं, शायद कभी नहीं।

मुझे विश्वास नहीं होता—तुम्हारा प्रतीक अशोक उनकी गोद में है। तुम कहते हो, कभी प्रेम नहीं किया, क्या यह कभी सम्भव हो सकता है ?

हो सकता है अनुराधा, सन्तान प्रेम का प्रतीक नहीं होती। अनुराधा का मुँह लाल हो उठा—एक क्षण मौन रहकर वह बोली—कुछ भी हो, अशोक इस घर का लड़का है। वह अपने घर से अलग नहीं रहेगा।

आलोक ने उत्तर नहीं दिया।

जार्जेट की उस झिलमिलाती साड़ी में वह चपल युवती अनुराधा आज पहली ही बार इतनी गम्भीर हुई।

आलोक का प्रश्न-भरा उत्तर कण्ठ में ही रह गया—अनुराधा चिकने फर्श पर चप्पल का पद प्रहार करती हुई वेग से बाहर निकल गई।

× × ×

उसके एक सप्ताह बाद, एक दिन डिस्पेन्सरी से आकर आलोक ने देखा—अशोक आँगन में बैठा खिलौने का बाजार लगा रहा है और अनुराधा जमीन पर बैठी दूध का ग्लास लेकर उसे फुसला रही है। एक दृष्टि में उसने बच्चे और पत्नी को देख डाला, और एक क्षण के लिए उसका मन अस्थिर-सा हो उठा—कदाचित् प्रेमा भी आयी हो; सम्भव नहीं, उसने अपने बच्चे को सौतेली माँ के पास अकेला भेज दिया हो और अगर अनुराधा उससे बच्चा ही माँग लाई हो तो कितना बड़ा अन्याय है, परित्यक्ता नारी को गोद से बच्चे को छीन लेना—क्या यह उचित था। उसका मन आज प्रेमा के प्रति वेदना और सहानुभूति से भर उठा।

रोज की तरह आज अनुराधा के नेत्रों में कौतूहल नहीं जगा, सुन्दर होठों पर मादक मुसकान नहीं खिली। तनिक गम्भीर-सी बोली—कपड़े उतारो, जलपान लेकर मैं अभी आती हूँ।

बच्चा अकारण मचलकर रो पड़ा—अनुराधा उसे लेकर उठ गई।

बच्चे को लेकर अनुराधा भीतर आई—चाय की ट्रे, जलपान की तश्तरी लेकर नौकरानी पीछे-पीछे आई। मेज के एक तरफ बच्चे को बैठाकर अनुराधा चाय छानने लगी—बच्चे ने जरा देर में सजी-सँवारी मेज की व्यवस्था बदलदी, फूलदान के फूल बिखर पड़े, जलपान की तश्तरी उलट गई। आलोक की भौहों पर बल पड़ गए। अनुराधा ने अशोक को गोद में उठा लिया। आलोक ने देखा उसके होठोंपर मुसकान थी, बहुत ही गम्भीर। उसने आश्चर्य से पूछा—आज यह साड़ी तुमने कैसी पहन रखी है? और नङ्गे पाँव...! तकलीफ नहीं होती बिना आदत के?

बिलकुल नहीं।

बैठो, आज चाय नहीं पीओगी?—आलोक ने पूछा।

नहीं अभी तो कपड़े तक नहीं बदले। अशोक को नहलाना है, कपड़े बदलने हैं, बड़ा नटखट हो गया है।

कोई गम्भर विषय छिड़ने की आशा त्याग कर आलोक ने कहा—इसका काम नौकरानी भी तो कर सकती है।

तनिक हँसकर अनुराधा बोली—तो फिर हम लोग शिशु-

पालन के इतने पाठ पढ़कर क्या अपना समय व्यर्थ नष्ट करती हैं।

आलोक ने चुपचाप चाय की प्याली उठा ली।

× × ×

रात को सोने जाकर उसने देखा—अनुराधा ने अपने लिए एक अलग बिस्तर कमरे में लगा रखा है और छतपर आलोक का पलङ्ग लगा हुआ है।

उसने आश्चर्य से पूछा—तुम क्या कमरे में सोओगी? तकलीफ न होगी? गर्मी नहीं लगेगी?

लगेगी तो क्या, देखते नहीं अशोक को खाँसी आ रही है। वह क्या कमरे में अकेला सोयेगा।

कुछ दबे स्वर में आलोक ने कहा—वह अपनी माँ के पास भी तो सो सकता है।

मैं भी तो उसकी माँ हूँ।

आलोक ने प्रत्युत्तर नहीं दिया। अनुराधा के अचानक स्वभाव-परिवर्तन पर उसे आश्चर्य, क्रोध और विस्मय एक साथ हो रहा था। उसने करवट बदल ली।

× × ×

डिस्पेन्सरी से लौटकर आलोक ने धीरे-धीरे पर्दा खिसकाया। देखा, अशोक को पालने पर सुला कर अनुराधा मेज पर झुकी ढेरों पुस्तकें खोले तन्मय बैठी है।

अपनी लायब्रेरी की यह दुर्गति देख कर उसे क्रोध-सा हो

आया—दूध के डब्बे, चम्मच, निकर जहाँ-तहाँ पड़े हुए थे। चुपचाप आकर वह एक कुर्सी पर बैठ गया। दस मिनट बाद भी जब अनुराधा ने आँखें ऊपर न कीं, तब तनिक सरस-स्वर में आलोक ने कहा—अनुराधा, मेरी जगह तुम अगर प्रैक्टिस करो तो बहुत जल्द तुम्हारी डाक्टरी चल निकलेगी।

पति के स्वर से चौंक कर अनुराधा ने मुँह ऊपर करके कहा—ऐसा क्यों ?

तुम्हारी तरह मनोयोग से न मैं पढ़ ही सकता हूँ न इतने श्रम से किसी का इलाज ही कर पाता हूँ।

'ओह' अनुराधा मुस्करा कर बोली—सचमुच मैं बहुत व्यस्त थी, अशोक के दाँत निकल रहे हैं। उस की दवा, और साथ ही किसी टानिक की खोज में थी।

आलोक को लगा जैसे प्रेमा का ही बदला अनुराधा एक-एक पाई करके उससे चुका रही है। अशोक में ही व्यस्त रहनेवाली अनुराधा, वह कालेज की रङ्गीन तितली धीरे-धीरे बदल कर उस साधारण-सी गृहिणी प्रेमा की तरह ही होती जा रही है। कुछ ही महीनों में उसमें कितना परिवर्तन आ गया है ! साड़ी का उल्टा पल्ला अब सीधा रहने लगा है, लहराते हुए सुन्दर केशों की राशियाँ लापरवाही से जूड़े में बँधी रहती हैं। साड़ी की शिकन, ब्लाउज के रङ्ग पर अब अनुराधा का ध्यान नहीं रहता; पाँवों में चप्पल अब उतना आवश्यक नहीं—अक्सर वह नङ्गे पैरों बच्चे के पीछे-पीछे घूमा करती है। कहीं घूमने-फिरने, सिनेमा

आदि जाने की अब न उतनी उत्सुकता है न आग्रह। कभी-कभी आलोक के प्रस्ताव को भी वह टाल जाती है।

पति को विचार-मग्न देखकर अनुराधा पुस्तकें समेट कर उठी। बोली—आओ, चलें जलपान का वक्त हो गया। अशोक जाग उठा। उसे गोद में लेकर पति के आगे-आगे वह चल पड़ी।

आलोक सोच रहा था—नारी कितनी रहस्यमय है।

जलपान करते-करते आलोक ने कहा—कल रायसाहब के यहाँ पार्टी है, मिस नयना का विवाह है, चलना है न तुम्हें।

कोशिश करूँगी, शायद चल सकूँ।

दूसरे दिन नियत समय पर तैयार होकर आलोक ने आकर देखा—अनुराधा अशोक के पास बैठी बार्ली बना रही है। बोला—छः बजते हैं; चलो, जल्दी करो।

अनुराधा ने किसी प्रकार की चञ्चलता नहीं प्रकट की। बार्ली छानती हुई बोली—लेकिन मैं चल न सकूँगी। अशोक आज बहुत सुस्त हो रहा है, मैंने मिस नयना से माफी माँग ली है।

आज पहली बार आलोक पत्नी पर झुँझला उठा। क्रुद्ध स्वर में बोला—दिन-रात बस अशोक...अशोक, मैं तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं।

ऐसा मैं कब कहती हूँ? लेकिन कोई माँ बीमार बच्चे को छोड़ कर क्या आमोद-प्रमोद में भाग ले सकती है?—अनुराधा

का स्वर काँप रहा था, लेकिन उसके मुख पर दृढ़ता का आभास था।

आलोक ने कठोर स्वर में कहा—ले सकती है, जब को उस बच्चे की माँ जीवित हो। तुम यह क्यों भूल जाती हो कि तुम उसकी अपनी माँ नहीं, बल्कि सौतेली माँ हो।

परम शान्त-गम्भीर स्वर में अनुराधा बोली—यही तो मैं सोचती हूँ। तुम पति बन कर नारी का, पत्नी का गौरव न निभा सके, पिता बन कर सन्तान का वरदान माथे न चढ़ा सके। मैं सौतेली माँ बन कर भी देखूँ जीजी के साथ किए गए अन्याय का प्रायश्चित्त कर पाती हूँ या नहीं। तुम पुरुष हो, नारी का मूल्य तुम्हारी दृष्टि में बहुत ही सीमित है; लेकिन मैं नारी हूँ, नारी का मूल्य, नारी का गौरव नारी ही आँक सकती है। तुम्हारी दृष्टि मे जीजी एक तुच्छ साधारण गृहिणी भले ही हो, किन्तु मेरी दृष्टि में बहुत ऊँची, आदर्श और महान् है। और आज इस निरीह बच्चे पर क्रोध तुम भले ही कर लो, लेकिन क्या सचमुच तुम हृदय से विद्वेष करते हो? नहीं, कभी नहीं, जीजी से तुम मुँह मोड़ सकते हो, इस से नहीं। यह तो केवल तुम्हारी इसके प्रति प्रवञ्चना-मात्र है।

अनुराधा बोलती-बोलती एकदम चुप हो गई। आलोक ने देखा—विस्मय के साथ—उसकी आँखें अश्रुपूर्ण हो उठी हैं।

उसका पुरुषत्व इस गर्वित, अभिमानिनी अनुराधा के सामने नत-मस्तक हो उठा। निकट आकर उसने अनुराधा को

अपने सहारे खड़ी करके कहा—लेकिन अनु, यह तो उचित नहीं कि प्रेमा की तरह तुम भी मेरे अन्याय को सिर झुकाकर सहती जाओ, अपने प्रायश्चित्त में मुझे भी समभाग दो। उस भोली प्रेमा की दृष्टि का देवता तुम्हारी दृष्टि में दानव तो नहीं बनना चाहता...।

अनुराधा ने अशोक को पति की गोद में देकर कहा—शपथ लो। प्रेमा जीजी ही तुम्हें क्षमा कर सकेंगी, मैं नहीं।

आलोक ने बच्चे के कपोलों पर एक चुम्बन की छाप अङ्कित कर दी। अनुराधा मुसकरा रही थी; आँखों के आँसू अब सिमट गए थे। पहली बार पिता का स्नेहदान पाकर बालक ने अपनी चपल बाहें पिता के गले में डाल दीं।

पति-पत्नी के बीच जगमगाते दीप-सा अशोक मुस्करा रहा था। उसकी अधुरी सुन्दर दंत-पंक्तियाँ चमक रही थीं, और आलोक तथा अनुराधा? वे दोनों अब प्रेमा को मनाने जा रहे थे।

फाउण्टेनपेन

ताँगे से दो लड़कियाँ एक साथ उतरीं और संडल खट-पट करती हुई मेरे आफिस में आ धमकीं।

मेरी दृष्टि पहले आफिस के उस दरवाजे पर गई जो श्रीमतीजी के शयनगृह में खुलता था। आश्चर्य नहीं, इन देवियों के पीछे शाम को क्या-क्या जवाब देना पड़ेगा, इस लिए उधर से इतमीनान करके मैं उन दोनों की ओर मुखातिब हुआ।

तबतक एक देवीजी ने मेज पर पड़ा फाउण्टेनपेन बड़ी बेतकल्लुफी से उठा कर एक हल्का झटका देते हुए कहा—क्षुधापीड़ितों के लिए हमलोग चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं।

दूसरी देवीजी ने चन्दे की कापी मेरे सामने खोल कर रखते हुए कहा—बड़ी कृपा हो अगर जल्दी कुछ दे दीजिए। अभी बहुत जगह जाना है।

इस कृपा और दान के लिए मैं बिलकुल तैयार न था। अभी दस मिनट पहले श्रीमतीजी से एक छोटी-मोटी बहस के

रूप में झगड़ा हो चुका था। उनका कहना था, होली के इस मौके पर ऊपरी खर्च मैं करूँ, और मैं कहता था कि यह बिलकुल गलत है। और त्यौहारों को तरह होली की जिम्मेदारी भी तुम्हें लेनी पड़ेगी। यह कोई वजह नहीं कि इस साल चीजें महँगी हैं, कपड़े महँगे हैं, इसलिए इसका बोझ मैं उठाऊँ। घण्टों दलीलें हुई और कटती गई। अन्त में झुँझला कर मैं अपनी तालियों का गुच्छा श्रीमतीजी के पास फेंककर चला आया था—क्योंकि मुझे विश्वास है कि यदि होली की जिम्मेदारी मैं लेता तो वायल और तनजेब के नीचे बातें न होतीं। इस-लिए यह डर होते हुए भी कि कहीं बचे हुए रुपये, किसी सर्राफ के बक्स में न जा पड़ें या किसी साड़ीवाले के हाथ न लग जायँ, मैं कुछ देर के लिए अपनी चिन्ता भुला देना चाहता था। इस वक्त रुपये तो क्या शायद पैसे भी मेरी जेब में दो-चार आने से ज्यादा न थे। श्रीमतीजी से लौट कर माँगना टेढ़ी खीर था। इस लिए कुछ देर पशोपेश में पड़कर मैं बोला-आप लोग शाम को मिलिए। इस वक्त मैं जरा जल्दी में हूँ।

लड़कियों ने एक दूसरी की ओर कनखियों से देखा और कापी समेटती हुई बोलीं—कोई बात नहीं। तो आप शाम को कबतक मिल सकेंगे ?

यही ७—८ के बीच में—मैं बोला।

अच्छी बात है। तो हम शाम को आयेंगे—दोनों ने लगभग साथ ही कहा और वे उसी तरह खट-पट करती हुई सीढ़ियों से उतर गईं।

इन चन्देवालों को शकल मैं दूर से ही पहचान लेता हूँ। लड़कियों के बारे में भी मेरा अनुमान ठीक निकला, लेकिन मुसीबत यह थी कि मैं इन्हें इनकार नहीं कर सकता था। और सच पूछिये तो हाँ करना भी उतना ही मुश्किल था, क्योंकि कचहरी से आने के बाद श्रीमतीजी कोट की तलाशी पहले लेतीं, नाश्ते को पीछे पूछतीं।

लड़कियों के जाने के बाद एक साथ मेरी नजर मेज और पतलून दोनों पर पड़ी। मेरे मक्खन-से सफेद पतलून पर नीले-नीले धब्बे एक साथ छींट से बन गए थे, और फाउण्टेन-पेन की जगह मेजपर खाली थी। वह शायद देवीजी के ब्लाउज में जगह पा गया था।

मैं कुछ देर के लिए परेशान-सा हो उठा। फाउण्टेनपेन सच पूछिए तो मेरा न था। श्रीमतीजी की किसी प्रिय सहेली ने विवाह के अवसर पर उन्हें उपहार के रूप में दिया था। कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर मैं माँग लेता था। कहीं गुम न हो जाय, इधर-उधर रख न देना, तुम्हारी आदत ही ऐसी है।—श्रीमतीजी की इस तरह की अनेक हिदायतों के बाद वह बड़ी मुश्किल से मेरे हाथ में आता। आज सुबह भी ऐसी ही जरूरत पर वह मेरे हाथ आ लगा था और अगर बीच में झगड़े का सूत्रपात न हो गया होता तो शायद अब तक वह लौट कर अपनी स्वामिनी के पास अवश्य चला गया होता।

खैर, इस वक्त जल्दी थी मैंने कपड़े पहने और कचहरी का रास्ता लिया। दिन भर तबीयत परेशान रही। मुमकिन है, दोपहर को कुङ्कुम ने फाउण्टेनपेन खोजा हो। और यह भी हो सकता है कि किसी ने लड़कियों के आने की खबर कर दी हो। नया पार्कर खरीद कर देना इस वक्त असम्भव है। और अगर दिया भी गया तो वे कब मानने लगीं कि वही कलम है। लड़कियों में एक को मैं पहचानता हूँ। वह मि० मेहरोत्रा के साथ दो-एक बार क्लब में टेनिस खेलने आई थी। क्या ही अच्छा हो, अपनी परेशानी मेहरोत्रा से कहूँ। लेकिन वे एक ही मसखरे हैं, कहीं मजाक न कर बैठें। और सम्भव है, बात फैल कर श्रीमतीजी के कानों में किसी और रूप में प्रवेश करे। इस तरह उधेड़बुन करते-करते शाम को ७ बजे घर पहुँचा। ताँगे से उतरते ही देखा, वे दोनों मेरे आफिस के बगलवाले कमरे में बैठी हैं।

रोज की तरह आज भी मैं भीतर ही गया, आँगन में श्रीमतीजी धोबी के कपड़े लिखने बैठी थी, मुझे देखते ही उठीं और अपनी मधुर मुस्कान से स्वागत करती हुई बोलीं—बड़ी देर कर दी आज, इन लड़कों से कलम-दावात बचना मुश्किल है। खैर, फाउण्टेनपेन कहाँ है? लाओ, जल्दी काम खतम भी तो हो।

मैंने दूसरी कमीज पहनते हुए कहा—वह शायद आफिस में होगा, मैं अभी लाए देता हूँ।

नहीं, नहीं, तुम कपड़े बदलो। मैं लिए आती हूँ। और इसके बाद ही जो मैंने आँखें ऊपर कीं तो श्रीमतीजी एकदम गायब थीं!

इसके कुछेक मिनट बाद श्रीमतीजी लौटीं तब उनका हँसता हुआ मुँह बहुत ही गम्भीर था। माथे की शिकन उस गम्भीरता की और स्पष्ट कर रही थी।

धोबी को हुक्म हुआ—कपड़े आज नहीं मिलेंगे! वह मानो इसके लिए तैयार ही था, तुरत उठकर चला गया। मैं भी उठा, यद्यपि मैं अभी निश्चय नहीं कर पाया था कि कहाँ जाऊँगा। श्रीमतीजी ने बीच में ही रोककर कहा—

मल्लिका तुम्हारी कौन है?

मेरी?—मैंने आश्चर्य के साथ पूछा।

जी हाँ, आपकी—कुङ्कुम ने अपने रुँधे गले को खाँस कर साफ किया।

लेकिन मैं तो किसी मल्लिका को जानता नहीं।—मैं बोला।

इतना झूठ तुम बोलते हो, खुदा के लिए कभी तो सच बोला करो—

सच ही तो कह रहा हूँ।

सच कहते हो। तो इसे पढ़ो—एक कागज का टुकड़ा मोड़ कर मेरे हाथ में देते हुए श्रीमती जी बोलीं।

मैंने खोल कर पढ़ा—

प्रिय वकील साहब, नमस्ते।

इस वक्त भी आप से मुलाकात न हो सकी, गोकि मैं आप के निर्धारित समय पर आ गई थी। आशा है, आपको आपत्ति न होगी, धन्यवाद के साथ आप का फाउण्टेनपेन स्वीकृत किया जा रहा है, यों आशा आपसे इससे अधिक थी।

शेष—

मल्लिका

अरे, तो वह चली गयी!—मैं तेज कदमों से बाहर आया, नौकर ने बताया—उन्हें जल्दी थी और बहूजी ने कहा कि इस वक्त उनसे मुलाकात नहीं हो सकती। वे लोग चली गईं।

मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने, साइकिल ली और मेहरोत्रा के घर की ओर भागा। सौभाग्य से मेहरोत्रा घर पर ही मिले। पूछा—इस तरह परेशान और घबराए क्यों हो, खैरियत तो है?

खैरियत पीछे पूछना—यह बताओ तुम्हारे साथ जो लड़की अकसर टेनिस खेलने क्लब जाती रही है, वह तुम्हारी कौन है?

कौन, कोकिला?—मेहरोत्रा ने अपने मोटे ओठों को दाँतों से दबाते हुए पूछा।

कोकिला या कोयल को मैं नहीं पूछता। मैं पूँछता हूँ मल्लिका। मल्लिका कहाँ है, वह तुम्हारी क्या लगती है?

वह मेरी साली है, सुनो तो—मेहरोत्रा ने मेरा हाथ पकड़ कर एक तरह से जबरदस्ती अपने ड्राइङ्ग-रूम में मुझे खींच लिया—मल्लिका अकसर तुम से मिलने जाया करती है न! अब

पता चला । यों शैतान से कितना पूछा कुछ कहती ही नहीं । तो तुम्हीं ने उसे आज पार्कर प्रेजेण्ट किया था ? नहीं, नहीं, प्रेजेण्ट कहाँ किया था, वह शाम को कह रही थी कि अपनी बीबी के डर से रुपये नहीं दिये, यह कलम दे दी है । १५) आप के नाम से चन्दे में जमा करके उसने फाउण्टेनपेन ले लिया ।

यह धाँधली है, निरी जबरजस्ती है । वह है कहाँ ? तुम बुलाओ तो—मै एक साथ कई बातें कह गया ।

ओह बात यह है—मेहरोत्रा ने अपनी सफाई दी—वह एकदम तुम्हारे यहाँ से लौटकर स्टेशन चली गई, और अभी पौने आठ बजे छूटनेवाली ट्रेन से अपने पिता के पास चली गई । तुम जानते ही हो कल होली है, और इस साल उसकी शादी भी हो जायगी । उसके पिता ने तार पर तार देकर बुलाया, इसलिए जाना जरूरी हो गया । लेकिन भाई, उस चुलबुली तितली पर तुम्हारी नजर पहले से थी, इसे तो मैं जानता था, पर तुम जैसे शादी-शुदा को उसने कैसे पसन्द कर लिया, इस पर मुझे आश्चर्य होता है । तुम्हें शायद विश्वास न हो, बीसों सुन्दर नौजवान लड़कों की तस्वीरें उसके पास आईं, जिनमें कुछ तो बहुत अच्छी सर्विस में हैं, लेकिन उसने सब को नापसन्द कर दिया । अब मालूम हुआ कि कालेज से लौटने में अक्सर उसे देर हो जाया करती थी । इस पर तुम जानते हो तुम्हारी भाभी कुछ पुराने ख्याल की हैं, कितना हङ्गामा खड़ा कर देती थीं—जरूर वह तुम्हारे ही यहाँ चली जाती...!

बको मत ! एकदम से मैं चिल्लाया ।

लेकिन मेहरोत्रा ने मेरे दोनों हाथ मुट्ठियों में रखकर दबाये और बोले—इसमें छिपाने की बात ही क्या है। हम मर्द तो एक, दो, तीन, चाहे जितनी शादियाँ करते चलें, हाँ, हिम्मत रखनी चाहिये कि हरएक के नाज-नखरे उठा सकें, वरना घर में वह बलवा उठ खड़ा होगा कि अपने लिए सिर्फ कम्बल और कमण्डल के सिवा कहीं शरण नहीं मिलेगी, तो समझ गए न ?

जी समझ गया ! मैं एकदम से झल्ला उठा। मेहरोत्र की मशीन फिर चली—खैर कोई बात नहीं तुम जिस उम्र में हो, उसमें प्रेमी की उच्छृङ्खलता नहीं रहती। प्रेम इस समय गम्भीर हो उठता है। लेकिन भाई, तुमने यह नहीं बताया कि तुम्हारी श्रीमतीजी में क्या खराबी है, आखिर वह बेचारी...

और मेहरोत्रा की बात खतम होने के पहले ही, मिसेज मेहरोत्रा ने कमरे में कदम रखते ही कहा—मल्लिका के साथ क्या तुम्हारी भूख-प्यास भी चली गई।

पता नहीं, यह आरोप मुझ पर था या मेहरोत्रा पर, मैं एकदम उठ कर खड़ा हो गया, लेकिन उसके साथ ही मेहरोत्रा की जबान फिर चल पड़ी—गायत्री—देखो तुम्हारी मल्लिका के सारे भेद आज खुल गये। उसके निर्वाचित वर, तुम्हारे भावी बहनोई तुम्हारे सामने हैं।

मिसेज मेहरोत्रा ने गौर से मुझे देखा। मैंने नमस्ते किया। केवल शिष्टता के नाते उन्होंने प्रत्युत्तर दिया—मुझे सर से पाँव तक देखा, और मेहरोत्रा की ओर मुँह कर के बोलीं—आपका नाम ?

एकदम घबराकर मैंने कहा—झूठ है, बिल्कुल झूठ। मैं मल्लिका को बिल्कुल नहीं जानता। वह है कहाँ ?

आप घबराइये नहीं—उनको श्रीमतीजी ने कहा—विवाह एकदम उसी की इच्छा पर है। होली के तीसरे दिन वह लौट आयेगी। लेकिन जरा ठहरिए...आपकी एक तस्वीर उसके पास है...।

मेरी तस्वीर ?

जो आपकी। एक बार उसकी दराज में मैंने देखा था—काली शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा आप पर खूब फबता है। आप की वह ऊँची टोपी देखकर मुझे आपके मुसलमान होने का शक हो गया था...जरा ठहरिए, मैं उसे लेती ही आऊँ। शायद दराज खुली हो।

मिसेज मेहरोत्रा के पीछे फिरते ही मैंने जो झटका दिया तो मेरा हाथ मेहरोत्रा के हाथ से अलग था, मैं स्वतन्त्र था। एकदम से मैंने अपनी साइकिल उठाई और घर की ओर भागा।

जिस तरह मेहरोत्रा जैसे बातूनी के सामने किसी की नहीं चल सकती, सच पूछिये तो श्रीमतीजी के गम्भीर मौन व्रत के सामने भी इसी तरह मुझे हार माननी पड़ती है। इतनी रात को जो लौटा तो घर के सारे प्राणी नींद की खुमारी मिटा रहे थे। श्रीमतीजी का कमरा अन्दर से बन्द था। लिहाफ, कम्बल, चादर किसी का पता नहीं, जैसे आज एहातियातन सब कपड़े उठा कर बन्द कर दिये गए हैं। बिजली जलाई और चुपचाप आफिस के कमरे में जाकर आरामकुर्सी पर लेट गया।

भूख के मारे बुरा हाल था। कमबख्त फाउण्टेनपेन के पीछे दिन भर से चिन्ता का बोझ सर पर सवार है। लेकिन कुछ भी हो, मैं श्रीमतीजी का पति था। मैं उनकी निगाहों में कितना ही विश्वासघाती क्यों न हो जाऊँ, मुझे भूखों रखना उन्हें पसन्द न था। मेज के नीचे निगाह गई तो देखा—खाना मय दूध के ढका रखा था। खाना खाया। दिमाग कुछ राह पर आया। आरामकुर्सी पर लेटकर रात काटना, दिनभर की थकावट के बाद, जरा मुश्किल-सा लगा, लेकिन बेवसी थी—एक स्टूल खींचकर पाँव रखे और अब दिन भर की बातें इतमीनान से समझने के लिए आँखें बन्द करके दिमाग से मश्विरा करना शुरू किया। जल्द आँख लग गई। मेरी विचार-धारा रंगीन स्वप्न-राज्य में विचरने लगी। पहले मल्लिका और कुङ्कुम की तुलना की। बहुत देर के बाद भी मैं यह निश्चय न कर पाया कि मल्लिका ज्यादा खूबसूरत है कि कुङ्कुम। कुङ्कुम मेरी पत्नी थी, पाँच सुखमय वसन्त उसके साथ हँसी-खुशी में बीत चुके थे। उसे मेरा मन क्यों न अच्छा कहता। लेकिन यह मल्लिका जो अनपेक्षित वरदान की तरह अचानक गले आ लगी थी। उसे कम से कम असुन्दर नहीं कहा जा सकता। दूसरी आई हुई लड़की यद्यपि मल्लिका से भी सुन्दर है, लेकिन उसकी माँग का सिन्दूर जैसे पुकार-पुकार कर कहता हो कि यहाँ रोमांस का रास्ता बन्द है। और मुझे उससे कोई दिलचस्पी भी न थी। बड़ी उधेड़-बुन के बाद मेरे मस्तिष्क ने यह निर्णय किया कि मल्लिका कुङ्कुम से ज्यादा खूबसूरत है, कुछ बातों

में—कुङ्कुम दो बच्चों की माँ है, हँसती कम है, चिड़चिड़ाती ज्यादा। मल्लिका में वासन्ती का चुलबुलापन है, काननबाला की शोखी, और हाव-भाव में वह बेजोड़ होगी। अगर मैं झूठ न बोलूँ तो मुझे कहना होगा कि इस वक्त मेरा रोम-रोम आनन्द से पुलक रहा था। मुझ-सा भाग्यवान कौन होगा जिसे इस तरह किसी सुन्दरी लड़की ने चित्रलेखा की तरह निर्वाचित किया होगा...इसी समय निश्चित किया कि विवाह मैं करूँ या न करूँ; क्यों न इस मामले को कुछ दिन चलने दूँ...दो-तीन दिनों में वह लौटेगी और एकदम से मुझे लगा कि ये दो तीन दिन कैसे बीतेंगे...।

इतने में एकदम से लगा पानी की मोटी धार मेरे ऊपर टूट पड़ी हो। मै चौंक पड़ा; आँखें खुलते ही देखा—मैं लाल-पीले रङ्गो से नहा उठा हूँ—और सामने श्रीमतीजी—मेरी कुङ्कुम रानी खड़ी मुस्करा रही थीं। एक बार इच्छा हुई कि लड़ बैठूँ। लेकिन उन्होंने हँसते-हँसते अबीर का टीका मेरे माथे पर लगा कर कहा—आज होली है, मुबारकबाद!

और फिर कैसे हम दोनों में मेल हो गया, स्पष्ट है। मैंने कुंकुम को इतमीनान दिलाया कि मैं तार देकर उससे अपना फाउण्टेनपेन अभी मँगवा लूँगा—बला से वह नाराज हो, मुझे इसकी परवाह नहीं। मैंने उसे तार दे दिया, दोपहर को मेह-रोत्रा ने आकर बताया—भाई, वह तुम्हारी तस्वीर नहीं है किसी और लड़के की है...। मैंने देखा, पर्दे के पीछे खड़ी

कुंकुम ने स्वयं अपने कानों से सुन लिया। सन्तोष की साँस लेकर मैंने कहा—मुझे तुम्हारी मल्लिका चाहिये भी नहीं। मुझे चाहिये मेरा फाउण्टेनपेन, समझ गए।

मेहरोत्रा ने सर हिलाया, गम्भीर निश्वास लिया, जैसे यह असफलता मुझे नहीं, उन्हें ही मिली हो। मैंने देखा, पर्दा हवा में उड़ा और कुंकुम के ओठों पर बड़ी ही मोहक मुस्कान खिली हुई थी।

—

समझौता

भोजन कर के, घड़ी पर एक निगाह डाला, सुबह का आया हुआ साप्ताहिक ले कर, कामना सोफे पर लेटने ही जा रही थी कि उसने सुना, बाहर कोई नौकर से पूछ रहा है—मेम साहबा हैं घर में ?

बरामदे में पड़े-पड़े, जम्हाई लेते हुए नौकर ने कहा—जी, मेम साहब हैं तो अन्दर ही, मगर इस वक्त आराम कर रही होंगी ।

कोई बात नहीं । हम उनके आराम में खलल न डालेंगे ।

हँसती हुई कई युवतियाँ बरामदे पर चढ़ आईं ।

दरवाजे पर दस्तक देने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ी। कामना ने स्वयं दरवाजा खोल दिया ।

नमस्ते, कामना देवी । आते ही कामरेड लीला ने मुस्कराते हुए कहा—अरे, तुम तो पहिचान ही में नहीं आ रही हो ।

नमस्ते, नमस्ते । आओ, बैठो । तुम्हें तो बस यों ही दूर की सूझा करती है । मैं क्या कुछ बदल गई हूँ ।

इन चार महीनों में तुम तो इतनी बदल गई हो कि क्या बताऊँ। खैर। यह तो तुम समझ ही गई होंगी कि इस वक्त हम लोग क्यों आई हैं।

तुम्हारे चेहरे पर तो कुछ लिखा नहीं है, जो मैं पढ़ कर समझ जाऊँ—कहते हुए कामना मुस्कराई।

कामरेड लीला के साथ की सभी युवतियाँ एक साथ हँस पड़ीं।

तो फिर यों कहो, कामना, कि प्रोफेसर की पत्नी बनते ही तुम्हारी बुद्धि एकदम कुन्द हो गई।

मेरी बुद्धि को क्या हुआ, यह बात तो, लीला, मैं बाद में बताऊँगी। पहले अपना मतलब तो कहो—कामना ने कहा।

कामरेड लीला ने अपना बेग खोल कर एक छपा हुआ पर्चा निकाला। फिर उसे कामना की ओर बढ़ाते हुए कहा—बङ्गाल के पीड़ितों के लिए चन्दा माँगने आई हैं हम लोग। साथ ही अगर मिल जाय, तो तुम्हारी शादी की मिठाई भी खा लेंगे।

खूब! 'कहते हुए कामना ने पर्चा हाथ में ले लिया, और उसे पढ़ कर मेज़ पर रखी एक किताब के नीचे दबाते हुए कहा—चन्दा का रुपया मैं अभी दिए देती हूँ, लेकिन कपड़े-वपड़े का इन्तजाम मुझसे इस वक्त न हो सकेगा।

लीला ने मुस्करा कर कहा—तुम्हारी खद्दर की साड़ियाँ होतीं, तो कुछ काम भी आतीं। इन सिल्क की महीन साड़ियों से तो किसी का बदन भी न ढँक सकेगा। मालूम है, बीबीजी,

आज एक पुरानी धोती से एक कुल-वधू की लाज ढँक सकती है, एक गज खद्दर के टुकड़े से दो छोटे बच्चों का शरीर ढँक सकता है, एक पाव चावल से एक भूखा व्यक्ति मृत्यु के पथ से लौटाया जा सकता है, एक छटाँक दूध एक बीमार बच्चे को जीवन-दान दे सकता है। यह वक्त सिल्क और ज़री का नहीं, कोच-कुर्सियों का नहीं। हमारा-तुम्हारा सब का कर्त्तव्य है कि शक्ति भर अपनी आवश्यकताएँ कम कर के उनको मदद करें। कहते-कहते लीला का मुँह लाल हो उठा।

कामना के मुँह पर एक मलिन आभा छा गई। वह बोली—तुम ठीक कहती हो, लीला! मेरा-तुम्हारा साथ कालेज में एक अर्से तक रहा है। मेरे विचारों से तो तुम परिचित ही हो। लेकिन आज मेरी परिस्थिति कुछ दूसरी है। उनके अधीन रह कर उनकी इच्छाओं के अनुसार ही मुझे सब-कुछ करना पड़ता है। फिर भी जो कुछ सेवा मुझ से हो सकेगी, मैं अवश्य करूँगी। आँखों में आए आँसुओं को छिपाने के लिये कामना उठ कर दूसरे कमरे में चली गई। मुँह पोंछ कर उसने ट्रंक खोला। दो नोट दस-दस के हाथ में ले लीला के पास आई। उसके हाथ में नोट दे कर वह बोली—लीला, विवाह की मिठाई खाने के लिए मैं तुम लोगों को कल निमन्त्रित करती हूँ। तुम लोग जरूर आना।

अच्छी बात है, कल हम जरूर आयेंगे। अच्छा, नमस्ते! —कामरेड लीला ने मुस्करा कर कहा, और अपने साथिनों के संग उठ कर चल पड़ी।

सोफे पर उठँग कर कामना कुछ भारी मन लिए सोचने लगी—दो साल पहले कितने ऊँचे विचार और आदर्श थे मेरे। सोचती, बी० ए० करके डाक्टरी पढ़ूँगी, देश की सेवा करूँगी, समाज की रूढ़ियों को तोड़ूँगी, नारी-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लूँगी, गाँवों में रात्रि-पाठशालाएँ खोलूँगी। क्या-क्या कार्य-क्रम बना रखे थे उस समय। विवाह और पति-पत्नी की रूप-रेखा तक कभी मन में नहीं आई। लेकिन मेरे जीवन की गाड़ी अचानक किसी दूसरे की जीवन-गाड़ी से टकरा गई। इण्टरमीडियट पास करते ही मेरा पल्ला प्रोफेसर जीवनलाल से बाँध दिया गया। और अब पत्नी बन कर, गृह-लक्ष्मी बन कर आज मैं क्या से क्या हो गई हूँ।

धरी रह गई उसकी देश-सेवा। नारी-अन्दोलन में काम करने की बात भी जैसे स्वप्न हो गई। और डाक्टरी की पढ़ाई तो न होनी थी, न हुई। पिता की आज्ञा और माता के हठ के सामने उसे सिर झुका देना पड़ा। पति से उसका कोई पहले का परिचय था। पिता ने उसके लिये वर पसन्द किया था। कामना को कोई देखने नहीं आया। प्रो० जीवन लाल ने उसे कॉलेज के रास्ते में आते-जाते कई बार देखा था। वह उन्हें पसन्द थी।

ब्याह हो जाने पर पति के मुँह से उसके कॉलेज आते-जाते समय उनके देखने की बातें सुन कर कामना हर्ष में रोमाञ्चित नहीं हुई, वरन एक प्रकार से उसे प्रोफेसर की कॉलेज की लड़कियों को घूरने की मनोवृत्ति के प्रति घृणा ही हुई।

कामना और प्रोफेसर की उम्र में काफी अन्तर था। कामना अभी अठारह की भी नहीं हो पाई थी, पर प्रोफेसर साहब तैंतीस पार कर चुके थे। उनकी आय अच्छी थी। चन्द प्राणियों की उनकी छोटी गृहस्थी थी। उनके हाथों की कृपणता और मन की कृपणता में कोई विशेष अन्तर न था।

उस परिवार में कामना जब दुलहिन बन कर आई, तो उसकी सास बीमार थीं। उन्होंने आते ही वधू की शुद्ध खादी की साड़ियाँ उतरवा कर बक्स में रखवा दीं। उसका चर्खा पड़ोस में मँगनी चला गया। और बक्स भर पुस्तकें, जो कामना साथ लाई थी, उसके पिता के यहाँ लौटा दी गईं।

सास से उठते-बैठते जो उपदेश उसे मिले, वे संक्षेप में इस प्रकार थे—इतने दिनों बाद मेरा विरागी पुत्र गृहस्थ बना है, इसलिए अपना सारा रूप, गुण और शील लेकर तू उसकी अर्चना में अपने को समर्पण कर दे।

अवज्ञा की इच्छा न रहने पर भी, कामना सास की इच्छा पूरी न कर सकी। अर्चना की। सभी वस्तुएँ उसके हृदय में ही रह गईं। दो व्यक्तियों के अलग-अलग आदर्श, अलग-अलग व्यक्तित्व मिल कर एक न हो सके। जिन पुस्तकों को पढ़ कर उसने अपने जीवन का ध्येय स्थिर किया था, जिन खादी के वस्त्रों को पहन कर वह गर्व का अनुभव करती थी, उन्हीं पुस्तकों और खादी के कपड़ों से प्रोफेसर साहब को घृणा थी, चिढ़ थी।

आज जो बीस रुपये कामना चन्दे में दे चुकी है, यह अगर

उन्हें मालूम हो जाय, तो असम्भव नहीं कि वह गृहिणी के पद से भी हटा दी जाय। लेकिन इस तरह दब्बू बन कर, निकम्मी हो कर वह कब तक बैठी रहेगी घर में। माना कि पति और पत्नी का गृहस्थी के प्रति कुछ समान कर्त्तव्य है, और उन कर्त्तव्यों से वह जी नहीं चुराती; लेकिन पति की माँग पर अपने को न्योछावर कर देना आज की नारी को शोभा नहीं देता। युग की माँग, देश की माँग, पीड़ितों की पुकार, इनके प्रति भी तो सब का अलग-अलग कर्त्तव्य है।

कामना उठ कर बैठ गई। नहीं-नहीं, उसे पति की अनुचित बातों का विरोध करना होगा, उनसे रूठना होगा, मचलना होगा, हठ करना होगा, लड़ना होगा। जैसे भी हो उनकी आज्ञा ले उसे अपने कार्य-क्षेत्र में उतरना ही होगा। सोचते-सोचते कामना की आँखों के सामने लीला और उसके साथ की अन्य युवतियों का श्रम-बिन्दुओं से धुला हुआ हास्योज्वल मुख खिल उठा। और चारों ओर लिपटा विलासिता का आडम्बर जैसे उसके अंग अंग को डसने लगा।

प्रोफेसर जीवनलाल क्लब से आठ बजे वापस आये। सब से पहले उनकी दृष्टि जिस पर पड़ी, वह मेज पर पड़ी हुई बीस रुपये की लीला के हाथ की रसीद थी। त्योरियों में बल डाले वह भीतर आये। कामना भोजन बना चुकी थी। कितने उत्साह से आज उसने भोजन बनाया था। आवश्यकता न होते हुए भी, पति की दो प्रिय चीजें और बना ली थी—मटर-चिवड़ा और

खीरमोहन। वह सोचती थी कि तृप्तिकर भोजन पा कर प्रोफेसर साहब का मूड अगर अच्छा रहा, तो उसकी बातें वह अवश्य सुनेंगे।

जूते की अवाज सुनते ही वह आँगन में निकल आई। जीवनलाल ने रैकेट खूँटी पर टाँगते हुए कहा—ये बीस रुपये चन्दे के किससे पूँछ कर दिये गये ?

कामना से कोई उत्तर न बन पड़ा। वह चुप ही रही।

देखो। जीवनलाल का स्वर कर्कश हो उठा।

आँचल का पल्ला कामना की उँगलियों में लिपटने लगा।

जीवनलाल ने कहा—पैसे पेड़ से नहीं गिरते। घर में बैठे-बैठे इस तरह उदारता दिखाने का हक तुम को नहीं है। समझ गई न।

जी। कामना ने सहमते हुए कहा—लेकिन वे रुपये तो मैंने अपने पास से दिये हैं।

अपने पास से—जीवनलाल झल्ला उठे। मैं कहता हूँ, इस घर की एक कौड़ी भी मेरी इजाजत के बगैर बाहर नहीं जा सकती।

फिर उत्तर और प्रतिवाद का साहस कामना में न रहा। आँसू की बूँदें उसकी आँखों में झलमला ने लगीं।

खा-पी कर जीवनलाल बैठक में जा बैठे। नौकर ने भीतर आ कर कामना से कहा—साहब आप से जल्द तैयार होने को कह रहे हैं। सिनेमा जाना है।

पति को खिला कर, बचा खाना उठा कर कामना सोने जा रही थी। आज का अपमान उसे काँटों की भाँति चुभ रहा था। भूख-प्यास तक का उसे ख्याल न रहा। सहसा पति की इस आज्ञा पर वह खीझ उठी। बोली—जा, कह दे कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है।

नौकर वापस चला गया। जीवनलाल उसकी बात सुन कर स्वयं उठ कर अन्दर आये। बोले—चलो, कपड़े पहन लो जल्दी! हर बात में जिद अच्छी नहीं होती।

उनके स्वर में सरसता न सही, कर्कशता भी न थी। विवश-सी कामना कमरे में जा कर कपड़े बदलने लगी।

बाहर आते ही जीवनलाल की उसके कपड़ों पर दृष्टि पड़ी। तुम्हें मेरी बदनामी ही कराने में आनन्द मिलता है। हज़ारों बार कह दिया कि इन साड़ियों को रख दो हिफ़ाजत से, जब अपने घर जाना तब पहनना इन्हें। मेरे साथ तुम्हारा यह देश-सेविका का स्वाँग नहीं चलेगा।

साड़ी वस्तुतः बुरी न थी। खद्दर सिल्क की वह साड़ी बड़े भैया-द्वारा उस के जन्म-दिवस पर उसे उपहार-स्वरूप मिली थी।

पग-पग पर अपनी विवशता और अपनी इच्छाओं का दमन इस समय कामना को खल गया। भर्राये हुए गले से वह बोली—मैं खादी पहनने का निश्चय कर चुकी हूँ।

क्यों? प्रोफेसर जीवनलाल का स्वर कठोर हो उठा।

मेरी इच्छा। कामना का मुँह लाल हो उठा।

यह तुम्हारी इच्छा मेरे घर में नहीं चलेगी ! जीवनलाल ने उत्तेजित हो कर कहा।

कामना का उत्तर कंठ में ही डूब गया। आँसुओं से उसका मुँह भींग उठा। लौट कर वह पलंग पर गिर पड़ी।

यही है नारी तेरा व्यक्तित्व ! पिता का घर पराया, और पति का घर भी अपना नहीं ! जहाँ प्यार हो, आदर हो, दो प्राणियों में अपनत्व हो, वहाँ तिरस्कार भी कभी-कभी मधुर हो उठता है। किन्तु जहाँ शासक और शासित की बात हो, वहाँ क्या कभी दाम्पत्य जीवन की सरसता आ सकती है ? नहीं-नहीं, जीना है मुझे, तो अपने आदर्श के साथ, अपने व्यक्तित्व के साथ जीना होगा। कुल-वधू का, पत्नीत्व का यह आडम्बर उतार देना होगा ! ऐसे ही सोच-विचार में उसने सारी रात काट दी।

जीवनलाल सिनेमा से लौट कर बाहर के कमरे में ही सो रहे। कामना की तरफ देखने को भी उनका न जी चाहा।

सुबह चाय और जलपान नौकर दे गया। भोजन की थाली भी मेज पर आ गई। किन्तु कामना स्वयं उनके सामने न आई। जीवनलाल ने भी पुकारने की आवश्यकता नहीं समझी।

ठीक दिन में दो बजे कामरेड लीला ने मुस्कराते हुए कामना के घर में प्रवेश किया। कामना बहुत व्यस्त थी—कभी कमीज ठीक करती, कभी पतलून के बटन टाँकती, कभी गृहस्थी की भूली-भटकी चीजें उठाती-रखती। लीला ने कौतूहल से पूछा—कहीं की तैयारी हो रही है क्या, कामना देवी ?

ओह लीला, तुम आ गई ! अरे, बहन; गृहस्थी में तो ये रोज ही के काम हैं। हाँ, आज तो मैं चलूँगी तुम्हारे साथ !

आ गए न प्रोफेसर साहब तुम्हारे चंगुल में ! लीला ने हँसते हुए विनोदपूर्वक कहा।

कामना मुस्कराती हुई उठी। जल्दी-जल्दी उसने जलपान तैयार किया। दो तश्तरियों में सजा कर पति के कमरे में टेबुल पर रख आई। गिलास में पानी और पान के बीड़े भी रखना नहीं भूली।

फिर लौट कर कामरेड लीला के सामने चाय और जलपान रखती हुई बोली—लो, तब तक तुम चाय पी लो ! मैं अभी तैयार हो कर आती हूँ !

अच्छी तरह कमरे बन्द कर के, मेज पर तालियों के गुच्छे के नीचे एक छोटा-सा पूर्जा दबा कर, उसने बाहर का दरवाजा भी बन्द कर दिया। और नौकर की हिफाजत में घर छोड़ कर वह लीला के साथ चल पड़ी।

प्रोफेसर साहब लौटे ! नौकर ने दरवाजा खोला। उनका माथा ठनका। पूछा—मेम साहबा कहाँ हैं ?

दो बजे के करीब एक बीबी आई थीं। उनके साथ वह कहीं बाहर गई हैं !

भीतर आते ही मिला तालियों का एक गुच्छा और कामना की चिट्ठी। प्रोफेसर साहब ने घबरा कर पत्र खोला। उसमें लिखा था—

आज पहली बार आपको पत्र लिखने बैठी हूँ। कोई उपयुक्त सम्बोधन मुझे खोजने पर भी नहीं मिल रहा है। पति-पत्नी के बीच कितने प्रेम भरे सम्बोधनों का आदान-प्रदान होता है। किन्तु मुझे तो प्रायः सभी सम्बोधन विद्रूप की हँसी हँसते हुए लग रहे हैं। आपको कदाचित् इसकी कोई आवश्यकता न भी हो।

मैं घर छोड़ रही हूँ, और जानती हूँ, कि इसका फल क्या होगा। लेकिन जिस घर को मैं इतने दिन रह कर भी अपना न बना सकी, उसके लिये ममता कैसी?

आज इस बीसवीं सदी में नारी से केवल पत्नीत्व की ही माँग करना अन्याय है! आज नारी से देश की भी कुछ माँग है। उस माँग को पूरा करना, कम-से-कम मेरा विचार है, प्रत्येक नारी का कर्त्तव्य है। आज से मेरा जीवन, मेरी सेवाएँ, उसी माँग को समर्पण हैं!

आपकी—

कामना!

पत्र मोड़ कर उन्होंने जेब में रख लिया। कपड़े उतारे। भूख रहने पर भी जलपान की इच्छा न हुई। आराम-कुर्सी पर लेट कर एक उपन्यास के पन्ने उलटे, सामने खुले पृष्ठ पर कामना का विषादपूर्ण चेहरा उभर आया। उसकी अस्पष्ट पुकार उनके कानों में पड़ी। वह उसकी चिन्ता में खो-से गए।

बहूजी तो अभी तक नहीं लौटीं! खाना क्या बनेगा?—नौकर ने दरवाजे पर खड़ा हो कहा।

बहूजी नहीं हैं, तो खाना भी नहीं बनेगा ! अपने लिए जो तू चाहे बना ले !

नौकर चला गया। मालिक को इतना विनम्र उसने कभी नही देखा था।

खाने की थाली आधे घण्टे के भीतर मेज पर आ गई। पानी ला कर नौकर ने हाथ धुलाया। जीवनलाल ने हाथ पोंछते हुए कहा—पर्दा ठीक कर के तू जा कर खा। मैं खा लूँगा।

खाना कुछ बुरा तो नहीं था, किन्तु कौर गले में अँटक रहे थे। सामने की कुर्सी पर कामना रोज खाते वक्त चुपचाप बैठी रहती थी। और आज···?

जीवनलाल सोचने लगे—कहाँ होगी कामना ? शायद लीला के घर गई होगी। विद्रोह कर रही है वह मुझसे ! करे ! उस-जैसी दस कामना आ सकती हैं ! लेकिन...लेकिन यह शून्यता कैसी ? मन की यह तड़प कैसी ? मैं तो उसे प्यार नहीं करता। कम-से-कम उसका तो यही ख्याल है। तो फिर उसे देखने की, उसे पाने की यह मेरे अन्दर उत्सुकता कैसी ? उनकी आँखें मुँद गईं। कामना पलकों में साकार हो उठी—छोटा कद, गोरा, सुन्दर मुँह, भोली आँखें, होठों पर विषाद की रेखाएँ, गति में शिथिलता ! यही थी वह कामना, जो पाँच महीने पहले वधू बन कर आई थी।

सहसा वह कुर्सी से उछल पड़े। कहीं उसने छल तो नहीं किया है मुझसे मेरे मन का भेद लेने के लिए ? तुरन्त उन्होंने नंगे पाँव पूरा घर छान डाला। किन्तु कामना की कहीं छाया

भी नहीं दीखी। उन्हें लगा, जैसे अकेला पा कर अपना ही घर उन्हें निगल जाने के लिए मुँह फैलाए हुए है।

घर से निकल कर उन्होंने ताला बन्द किया। नौकर को आवाज दे कर कहा—मैं बाहर जा रहा हूँ! यहीं बरामदे में सो रहना!

साइकिल उठाई, और घने अन्धकार को चीरते हुए आगे बढ़ गए।

कामरेड लीला के यहाँ जब वह पहुँचे, तो एक बज चुका था। लीला के पिता डक्टर थे। उन्हें जगाने में कोई विशेष दिक्कत न थी। लेकिन इतनी रात को लीला से मिलने की बात उसके पिता से वह कैसे कहें? क्या सोचेंगे वह? और अगर यहाँ भी कामना का कुछ पाता न लगा, तो?

दस मिनट तक किंकर्त्तव्यविमूढ़-से वह खड़े रहे। फिर आगे बढ़ कर उन्होंने घंटी बजा दी। ऊपर से आवाज आई—कौन है?

आवाज पहिचानी हुई थी। प्रोफेसर साहब के जी में जी आया। बोले—मैं हूँ, मिस लीला! जरा देर के लिए नीचे आने की तकलीफ कीजिए!

ऊपर से टार्च की रोशनी आई। फिर सुन पड़ी लीला की आवाज—ओह! प्रोफेसर साहब, इतनी रात को! कहिये कुशल तो है! मैं आ रही हूँ।

एक क्षण में द्वार खुल गया। स्विच दबा कर लीला ने रोशनी

कर दो। जोवनलाल ने व्यग्र हो कर कहा—कामना तुम्हारे यहाँ है न ?

मेरे यहाँ ! कामरेड लीला ने आश्चर्य-भरी मुद्रा से कहा—कामना देवी मेरे यहाँ तो नहीं हैं !

जीवनलाल के पाँव डगमगा गए। वह बोले—ईश्वर के लिए सच-सच कहिए ! क्या कामना यहाँ नहीं आई थी ?

आई जरूर थीं, लेकिन चार बजे के पहले वह ताँगे से वापस चली गई। क्या वह घर पर नहीं पहुँची हैं अब तक ? कोई और बात तो नहीं हुई थी ?

नहीं कोई विशेष बात तो नहीं हुई थी ! माफ कीजिएगा, बड़ी तकलीफ हुई आपको।

प्रोफेसर साहब ने फिर साइकिल उठाई। सर्दी से हाथ-पाँव काँप रहे थे। सर्ज का कोट अपनी शक्ति भर गर्मी दे रहा था। तब भी हाथ-पाँव ऐंठे जा रहे थे। कुछ देर तक फुटपाथ पर खड़े वह सोचते रहे कि अब कहाँ चलना चाहिए। जेन नाम की एक इसाई नर्स की याद आ गई। वह कामना के पास कभी-कभी आया करती थी। उन्होंने साइकिल आस्पताल को ओर घुमा दी।

संयोग अच्छा था। जेन अस्पताल के गेट पर ही मिल गई। ड्यूटी खतम कर के वह अपने क्वार्टर को लौट रही थी। प्रो० जीवनलाल ने साइकिल रोक कर नमस्कार किया। जेन ने मुस्करा कर कहा—कहिए कामना बीबी तो अच्छी हैं न ? अभी तो मेरी ज़रूरत उन्हें देर में पड़ेगो ! कैसे तकलीफ की आपने ?

क्या ख़्याल है आपका उसके स्वास्थ्य के बारे में? बहुत कमज़ोर हो गई है न?—जीवनलाल ने अटकते हुए कहा।

कोई बात नहीं! इस अवस्था में कमज़ोरी आना स्वाभाविक है। वैसे टानिक लेने के लिए तो मैंने उनसे कह दिया था। आप भी ख्याल रखिएगा। इससे वह स्वस्थ रहेंगी। बच्चा भी स्वस्थ होगा!

बच्चा?

जी हॉं! बताया नहीं शायद उन्होंने आपसे। शर्माती बहुत हैं वह। अच्छा, आपके यहॉं मैं समय मिला, तो कल ही आऊँगी। नमस्ते!—कह कर वह आगे बढ़ गई।

जीवनलाल वहीं कुछ देर खड़े रहे। उनकी समझ में न आया कि अब कहॉं खोजें। पिता का घर है शहर मे ही। उन्होंने वहाँ भी देख लेने की सोची।

सवेरा हो चला था। तारे एक-एक कर विदा हो रहे थे। सड़क से ही उन्होंने देखा, ताला बन्द था। पड़ोस में पूछा। मालूम हुआ कि घर लगभग दो सप्ताह से बन्द है। यहाँ कोई नहीं है।

अब? कामना! कामना का बच्चा! मेरा बच्चा! कामना के लिए उनका हृदय विकल हो उठा। जीवन में पहली बार वह कामना के लिए इतने आतुर हो उठे।

वह अब बहुत थक गए थे। उनका अंग-अंग टूट रहा था। फुटपाथ पर गुज़रते हुए एक खाली ताँगेवाले को पुकार कर

बोले—साइकिल रक्खो ! ताँगेवाले ने साइकिल उठा कर ताँगे पर रख दी। जीवनलाल बैठ कर बोले—चलो !

घर का दरवाज़ा अब भी बन्द था। रास्ते में आशा की जो एक किरण चमकी थी, वह भी विलीन हो गई।

चारपाई पर लेट कर उन्होंने एक गहरी साँस ली। पूरे शरीर में पीड़ा हो रही थी। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं।

दस बजे कामरेड लीला ने आ कर उन्हें जगाया। फिर बोली—कहिए, कुछ पता लगा कामना देवी का ?

जीवनलाल उठ कर कातर स्वर में बोले—नहीं उसका कोई पता नहीं लगा ? तुम बता सकोगी कुछ ?

लीला मुस्कराई। बोली—आप विश्वास कीजिए, कामना अच्छी तरह है ! लेकिन उसे लौटा लाना मेरी शक्ति के बाहर है। हाँ, आप अगर कुछ सन्देश देना चाहें, तो मैं उसे पहुँचा सकती हूँ।

जीवनलाल ने पैड ले कर एक पत्र लिखा। लिफाफे में बन्द किया। फिर लीला को दे कर बोले—इसका उत्तर शीघ्र-से-शीघ्र भेजने की कृपा कीजिएगा !

कामरेड लीला मुस्कराती हुई चली गई।

दो घण्टे के बाद जवाब ले कर एक आदमी आया। सादे कागज पर ये पंक्तियाँ घसीटी हुई थीं—

आप मेरे लिए इतने परेशान हैं, इतने उद्विग्न हैं, यह जान कर मुझे तनिक भी दुःख नहीं हुआ ! आप उत्सुक हैं मेरे लिए नहीं, बल्कि अपनी भावी सन्तान के लिए। बच्चे की बात ने

आपको मेरे लिए इतना व्याकुल कर रक्खा है। पति का प्रेम, पति की पत्नी के लिए उद्विग्नता प्रत्येक पत्नी के सौभाग्य का परिचायक है। किन्तु मैं लौटूँ किस आशा पर? आज भी तो यह बुलावा मेरे लिए नहीं, बल्कि किसी आने वाले के लिए है। कामना उसी दिन लौटेगी, जिस दिन आपके उस घर को वह अपना घर कह सकेगी! अपना स्वत्व दे कर पति की वन्दिनी नहीं बनना चाहती। केवल प्रेम ही उसे झुका सकता है। समय और युग के साथ सभी को बदलना पड़ता है। नारी का भी एक अलग व्यक्तित्व होता है, उसके भी अपने जीवन के उद्देश्य होते हैं।

आपकी—

कामना।

जीवनलाल ने कोट उतार कर खूँटी पर टाँग दिया। उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था। मुँह सूख रहा था। आराम-कुर्सी पर लेट गए। फिर नौकर को पुकार कर उससे थर्मा-मीटर माँगा।

बुखार! १०५ डिग्री! नहीं-नहीं, मैं न जा सकूँगा। रात ठंढ लग गई। वह जानती है, मैं रात भर मारा-मारा फिरा हूँ। फिर भी मेरे पत्र का यह रूखा-सा उत्तर दिया! नहीं-नहीं, मैं उसका मुँह भी नहीं देखना चाहता!...

सामने की खिड़की खोल कर वह कुर्सी पर लेट रहे। धीरे-धीरे उनकी आँखें झँपने लगीं। और फिर उनकी बन्द आँखों के सामने कामना की स्मृतियाँ, उसी आँगन की यादें

लिए, कभी जलपान लिए, उभरने लगीं। उन्होंने आँखें खोल दीं। फिर इधर-उधर देखते हुए बड़बड़ाने लगे—यह फूलदान वही भर गई है! यह टेबिल-क्लाथ, ये पर्दे उसी के सिए हैं! यह नीला स्वेटर उसी का बुना है! ओह! हर चीज में उसका स्पर्श है! और...और यह कल की रक्खी हुई जलपान की तश्तरी, पान के बीड़े! अगर उसे मेरा घर छोड़ना था, मुझसे अलग होना था, तो क्यों किया उसने यह सब? क्यों घर की हर चीज हिफ़ाजत से बन्द कर गई? क्यों अपनी याद यहाँ के कण-कण में छोड़ गई?...

जीवनलाल ज्वर की तीव्र उत्तेजना में ही बाहर निकल आए, और एक ओर लड़खड़ाते हुए चल पड़े।

कहाँ चलेंगे, हुजूर? जान-पहचान के एक ताँगेवाले ने आगे बढ़ कर पूछा।

डक्टर साहब के यहाँ—सी-विला!

आइए बाबूजी!

ताँगा रुका। लीला भी कहीं से लौट कर आ रही थी। इतना अस्त-व्यस्त जीवनलाल को उसने कभी नहीं देखा था। पास आ कर वह बोली—कहिए तबीयत ठीक नहीं है क्या? अरे, आपका चेहरा तो लाल हो रहा है! उतरिए! देखूँ, पिता जी हैं घर पर।

नहीं-नहीं, मैं उतरूँगा नहीं! कामना से कहो कि वह दो मिनट के लिए मुझसे मिल जाएँ।

लीला के जाने के पहले ही ऊपर की खिड़की बन्द हुई। कामना अपने-आप चली आ रही थी।

ताँगे में कामना जीवनलाल की बगल में बैठ गई।

लीला ने कहा—पिताजी को मैं अभी बुला रही हूँ!

नहीं-नहीं, मैं इनका इलाज कर लूँगी! नमस्ते! कामना ने कहा।

लीला ने मुस्करा कर कामना के हाथ अपने हाथ में ले दबा दिए। ताँगा बढ़ा।

ताँगा बढ़ा चला जा रहा था। जीवनलाल कामना के सहारे बैठे हुए थे। उसके ठंडे हाथ उनके जलते हुए माथे पर कितने सुखद लग रहे थे!

धीरे से उन्होंने उसके हाथ को अपनी सबल मुट्ठियों में ले कर कहा—तुमने घर क्यों छोड़ा?

क्योंकि वह मेरा नहीं था!

और आज?

आज घर का स्वामी मेरा है, इसलिए घर भी मेरा है।

आँसू की दो बूँदें जीवनलाल के गालों पर ढुलक पड़ीं। उन्होंने कस कर कामना का हाथ अपनी छाती पर दबा लिया। कामना उनकी ओर झुक गई। अपने जीवन में आज पहली बार उसने पति के सामने अपने को नारी-रूप में समर्पण कर दिया।

दूसरे दिन सुबह कामरेड लीला ने प्रविष्ट होते ही देखा,

जीवनलाल कामना की गोद में सिर रक्खे लेटे हुए थे। उल्लास की छटा दोनों के मुख पर थिरक रही थी।

मधुर मुस्कान के साथ लीला ने कहा—क्यों, समझौता हो गया क्या ?

सदा के लिए। कह कर जीवनलाल मुस्कराए। कामना के कपोल अरुण हो गए।

—

मातृत्व की छाया

चन्द्रमा अपनी अन्तिम किरणों को बटोर रहा था। तारे डूब चुके थे। शीला ने अच्छी तरह बच्चे को ढँका और धुली साड़ी, तथा पूजा की डोलची ले कर वह निकल पड़ी। गंगाजी पर अभी भीड़ ज्यादा न थी। वह धीरे धीरे सीढ़ियों पर उतरी और पहिले बच्चे को नहलाने लगी। बच्चा बार-बार काँप उठता। उसने अच्छी तरह बदन पोंछकर कपड़ा पहना दिया और बैठाकर स्वयं नहाने लगी। वह कोई स्तोत्र पाठ कर रही थी। बच्चा बड़ी तन्मयता से उसकी ओर देख रहा था।

जब वह नहाकर निकली उजाला होने लगा था। जरासी साड़ी माथे पर खींच कर वह बच्चे को लेकर चल पड़ी। सीढ़ी की अन्तिम पंक्ति पर आकर उसकी एक स्त्री से टक्कर हो गई। उसकी गोद में भी एक नन्हा-सा शिशु था। वह रो पड़ा। शीला ने मुँह ऊपर करके देखा—वह भंगिन हिरिया थी। घृणा और क्रोध से तमतमाकर शीला ने कहा—अन्धी हो गई है दिखता नहीं। और उसने बच्चे का हाथ जोर से झटक दिया। बालक जोर जोर से रोने लगा। हिरिया ने भी शीला को पहचान लिया।

उसने सड़क बटोरते समय अक्सर शीला को देखा था खिड़की पर। भयभीत-सी बोली—बीबीजी यहीं किनारे तो खड़ी हूँ, रात भर से बुखार में मेरा बच्चा तड़प रहा था। अभी तो उसने आँखें खोली हैं, आपकी रंगीन चादर देखकर इसने छू लिया।

शीला ने कठोर हो कर कुछ और अपशब्द कहे।

हिरिया भी अब कुछ गर्मा गई। बोली-बीबीजी सुबह-सुबह कोसो मत, मैं भी बाल-बच्चेवाली हूँ, आप भी! बच्चे सबके बराबर होते हैं।

शीला ने कहा कुछ नहीं—तीखी त्यौरियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि अच्छा ठहर बतलाती हूँ, मेरे बच्चे की बराबरी करने चली हैं।

घर आ कर उसने नहाया, बच्चे को नहलाया। फिर भी मन से घृणा के भाव न गए। पिताजी की कचहरी का समय हो रहा था—खाना तैयार किया, और पूजा करने बैठी मुन्नू तब से अब तक सो रहा था, जाकर उसे जगाया—लाल लाल आँखें और तनी हुई भौंहें स्पष्ट कह रही थीं आज खाना-खेलना नहीं होगा। शीला ने गोद में लेकर देखा, तेज बुखार से उसका बदन जल रहा था, वह फिर तकिए पर लुड़क गया।

हिरिया का हँसता-खेलता डेढ़ वर्षका शिशु दो दिन के बुखार में उसकी गोद सूनी कर के चला गया। उसके यौवन का यह प्रथम पुष्प इतनी जल्दी मुरझा जाएगा इसकी उसने कभी कल्पना भी न की थी। कितने प्यार से उसने उसका नाम राजा रखा था; दरिद्र झोपड़ी में राजा! उसका पति गरीबदास जब

तब इस नामकरण पर हिरिया की हँसी उड़ाया करता। हिरिया आँखों से मुस्कराती होठों से कटु वाक्यो में पति के उपहास का प्रत्युत्तर देती और अपने नन्हेसे राजा को हृदय से लगा छिपा लेती। वह राजा जब अचानक उससे नाता तोड़ कर चल पड़ा तब वह मृतप्राय हो गई। दो दिन घर के बाहर नहीं निकली, तीसरे दिन गरीबदास के बहुत समझाने-बुझाने पर अपने काम पर चली। आशाओं का फूलता-फलता बाग उसके सामने था। जल्द ही वह दूसरा शिशु प्रसव करनेवाली थी।

सड़क बटोरते बटोरते वह शीला के दरवाजे तक पहुँच गई—उसे ३–४ दिन पहले की घटना याद हो आई। उसी दिन शीला से सुबह सुबह उसकी झकझक हुई थी, रात होते होते उसका बच्चा अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर के चला गया। एक लम्बी साँस अनायास उसके मुँह से निकल पड़ी—सुबह-सुबह का शाप ही मेरे बच्चे को ले बीता...।

पटरी पर से हटकर वह एक ओर खड़ी हो गई—दो दिन की भूखी-प्यासी जर्जर देह काम करने से जवाब देने लगी। एक अँगड़ाई ले कर वह ज्योंही घूमी, शीला के दरवाजे पर खड़े बच्चे पर उसकी दृष्टि पड़ गई। बच्चा उससे दो ही हाथ के फासले पर सीढ़ियों पर खड़ा था। शीला के बच्चे से दो दिन छोटा, ऐसी ही घुँघराली अलकों में उसका भी नन्हासा गोरा गोरा मुँह हँसता रहता था। रोज सुबह उठ कर अपनी तुतली भाषा में वह माँ के साथ चलने का आग्रह करता था और दो-चार बताशों में उसे फुसलाकर वह पहले भाग जाया करती थी। जब से होशि-

यार हुआ वह अपने पावों चल कर उसके पीछे लग जाता। विचारमग्ना हिरिया के हाथ से झाडू अपने आप गिर गई।

बच्चे ने सीढ़ी से उतरने के लिए अपने नन्हें-नन्हें हाथ फैला कर कहा—अम्‌अम्। हिरिया के हाथ बच्चे की ओर फैल गए, बच्चा पलक मारते आ कर उसकी गोद में चिपक गया, उसका गर्म ललाट अपनी ठुड्ढी पर पड़ते ही वह घबराकर अस्फुट स्वर में बोली—अरे बुखार!

बच्चा उसकी गोद में और दुबक गया। क्षण भर के लिए सब कुछ भूल कर उसने बच्चे को हृदय से लगा लिया—उसका रोम रोम पुलक उठा जैसे वह अपने ही बच्चे को पा गई हो।

उसी समय शीला की कर्कश आवाज से वह चौंकी—कमीनी आज फिर सुबह-सुबह बच्चे को छू लिया, अच्छा ठहर बतलाती हूँ तुझे...और पट से ऊपर की खिड़की बन्द हुई, शीला झल्लाई हुई नीचे की ओर दौड़ी।

हिरिया अब अपने होश में आ गई थी, भयप्रकंपित हाथों से उसके बच्चे को सीढ़ी पर खड़ा कर दिया और एक साँस में वहाँ से भाग चली...उसका दम फूला जा रहा था।

शीला ने सामने बच्चे को पा कर उसी पर क्रोध उतारा। तीन दिन से बुखार में रहने से बच्चा आज घबरा कर माँ की अनुपस्थिति में सुबह-सुबह उठ कर बाहर भाग आया था। शीला उसे भीतर ला कर झल्लाई हुई उसके कपड़े उतारने लगी। पिता के आने पर उसने हिरिया की ढिठाई की शिकायत की। मुन्शीजी गम्भीर भाव से बेटी को परितोष दे कर कचहरी चले गए।

१७ दिन और लम्बी लम्बी रातें बीत गईं मुन्नू चारपाई से लग गया, अब वह न अच्छी तरह उठ बैठ सकता था न अच्छी तरह बोल सकता था। शीला को लगा कि जीवन का अन्तिम अवलम्ब मुझे छोड़कर चला जाना चाहता है। वह दिन-रात भगवान से प्रार्थना करती, देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानती, झाड़-फूँक, तंत्र-मंत्र, दवा, सभी कुछ होते रहने पर भी जैसे बच्चा उससे भागने पर ही उतारू हो गया हो। अट्ठारह साल की उम्र में सारा सुख-सौभाग्य पति की चिता पर फूँक कर नवयुवती शीला योगिनी बन बैठी थी। और इस दो महीने के शिशु को ले कर वह पिता की छाया में फिर आ पड़ी थी। धन-धान्य से भरे पूरे घर में शीला ने जिस वात्सल्यमई माता के आँचल में मुँह छिपाया था वह भी कुछ ही महीनों में उसे छोड़ कर अनन्त पथ की ओर चल पड़ी। गृह-गृहणी से मुक्त पिता ने विधवा कन्या और नन्हें मुन्नू को देख कर संसार में फिर मन लगाया।

वह शिशु भी आज भगवान् ले लेने के लिए आतुर हो उठे हैं। शीला व्रत उपवास करके हार गई, भगवान् के सामने सारी प्रार्थनाएँ निष्फल होते देख कर वह विक्षिप्त-सी हो उठी। ऐसा लगता बच्चा उसे देख कर आँखें मूंद लेता है। डाक्टर के पाँव पकड़ कर उसने प्रार्थना की—मेरे बच्चे को बचा लीजिए!

आँखों में आँसू भर कर डाक्टर ने कहा—भगवान् को याद करो बेटी, वही रक्षा करेगा!

अब तो अन्तिम अवलम्ब था फिर भगवान् से प्रार्थना करना—निस्तब्ध रात्रि में बच्चे को अच्छी तरह ढक कर वह

पूजा घर में जा कर भगवान् के सिंहासन के सामने लेट गई—भगवान् इतने निष्ठुर न बनो ! सब कुछ मेरा ले कर भी तुमने जो खिलौना दे कर दुनिया में रहने के लिए मजबूर कर दिया था, आज उस दिए दान को ले कर अपने नाम पर कलंक मत लगाओ, मेरे बच्चे को वापस दे दो। तुम्हारे लिए एक क्षुद्र जीवदान अदेय नहीं, मेरे स्वामी का स्मृति चिह्न·········। उसकी आखें धीरे-धीरे ढँक गई, मूर्ति के निकट पड़ी पड़ी वह स्वप्न देश में जा पड़ी।

नींद में ही उसे लगा, जैसे सिंहासन पर रखी मूर्ति के निकट उसके पति खड़े हो कर दुःखी स्वर में कह रहे हैं—शीला, उठो अपने अभिमान का प्रायश्चित् करो। तुम माँ थी, वात्सल्य का समुद्र तुम्हारे हृदय में था। फिर भी तुमने हिरिया के बच्चे को घृणा से देख कर अपशब्द कहा था। शिशुहीन उस अबला नारी का मातृत्व देख कर तुमने अपना बच्चा छीन कर उसका अपमान किया था। वह अपमान उसका नहीं, उसके निहित मातृत्व का था। जाओ···जाओ उससे प्रार्थना करो। तुम्हारे बच्चे को वही बचा सकती है। और धीरे धीरे उसके स्वामी मूर्ति में लीन हो गए।

शीला की नींद टूट गई। दिया अब भी टिमटिमा रहा था। बिल्वपत्र खिसक जाने से शिवमूर्ति स्पष्ट हो उठी थी। सीता के साथ श्रीराम की मूर्ति जैसे मन्द मन्द मुस्करा कर कह रही थी—क्या अब भी तुझे अभिमान है !

वह माथा टेक कर एकदम से खड़ी हो गई। बोली—जाती हूँ देव, तुम्हारी आज्ञा के साथ साथ भक्ति श्रद्धा से मैं उसके पाँव पड़ूँगी, अपने वचन की लाज रखना। द्वार खोल कर वह बाहर निकली तब ४ बज गए थे, सुबह की ठंडी ठंडी हवा में उसका दिमाग तर-सा हो उठा। वह बेतहाशा भागी जा रही थी। भंगियों की टोली के निकट पहुँचते ही उसे एक छाया मूर्ति-सी दीख पड़ी—

मोटी सी चादर में लिपटी हुई हिरिया सड़क बटोरने के लिए निकल पड़ी थी—शीला को देख कर आज वह स्वयं एक ओर हट गई, अन्धकार में वह शीला को पहचान न सकी थी, लेकिन मनुष्य मात्र के लिए अस्पृश्य हो कर और उस दिन गंगा तीर की घटना स्मरण कर उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा। वह एक ओर की चौमुहानी पर ज्योंही मुड़ी—शीला ने उसे पहचान लिया। वह एकदम से उसका पाँव पकड़ कर बोली—हीरा बहन, मेरे बच्चे का जीवन तुम्हारे हाथ में है। उसे बचाओ। उसके बिना मैं कहीं भी न रहूंगी।

हिरिया भयभीत-सी बोली—अरे बीबीजी! दया करो मुझ पर, मैंने तुम्हारे बच्चे को कुछ नहीं किया, अपने सोहाग की सौगन्ध खाती हूँ। मैंने सिर्फ गोद में उठा लिया था··· ईश्वर जानता है।

शीला उसके गले से लिपट गई—मैं यह नहीं कहती। वह मेरा नहीं तुम्हारा ही बच्चा है, मुझे माफ करो, उस दिन सुबह

सुबह, तुम्हारा जो दुखा दिया था, उसी दिन से वह बीमार पड़ा है। उस दिन तुम्हारी गोद में देख कर भी, मैं अपने आपे में नहीं रही थी, मुझे हृदय से क्षमा······

हिरिया के हृदय में स्पन्दन-सा हो उठा। वह शीला के हाथों से अपने को छुड़ा कर बोली—छोड़ो बीबीजी, मुझे छूओ मत, कोई देख न ले।

शीला उसकी कलाइयों को अपने हाथों बलपूर्वक पकड़ कर बोली—बहन दया करो, इतनी निष्ठुर न बनो, तुम्हारा अपमान भगवान् भी न सह सके, उनकी आज्ञा से मैं तुम्हें मनाने आई हूँ। चलो मेरे साथ मेरे मुन्नू को देखो; वह मुझे देखते ही मुँह फेर लेता है!

हिरिया क्षण भर खड़ी सोचती रही—और तब शीला के साथ साथ चल पड़ी। दरिद्र घर का 'राजा' क्या सचमुच बड़े घर में पड़ा पड़ा उसे याद कर रहा है?

दुग्ध फेन-सी शय्या पर बालक चादर से ढँका अब तक सोया था, उसने धीरे से चादर खिसका दी, बच्चे के ललाट पर हाथ फेरा, उसने एक हलकी-सी अँगड़ाई ली—नन्हीं नन्हीं बाहें उठीं, और बच्चे ने धीरे धीरे आँखें खोल दीं। कई दिन बाद वह स्पष्ट स्वर में बोला—अम्मा, अम्मा,

हिरिया ने उठा कर हाथ फेरा और अपनी गोद में लिटा कर बोली—भैया! राजा! मुन्ना!

बच्चे के रूखे रूखे होंठ हिले और एक मोहक मुस्कान उसके नन्हें-से मुँह पर खिल उठी। शीला ने डरते डरते उसके

सिर पर हाथ फेरा। बच्चे ने फिर आँखें बन्द कर लीं और ओठ चटकाया। हिरिया को छाती भर आई, उसने अपना स्तन बच्चे के ओठों से लगा दिया।

दिये की टिमटिमाती रोशनी के मन्द प्रकाश में दो माताओं की स्नेह को छाया में अपने को पा कर बालक ने मुँह फेरा—खिली हुई मुस्कान में उसने माँ के मुँह पर विषाद के चिन्ह देखे और माँ की ओर दोनों हाथ फैला कर—माँ, माँ, अम्मा पुकार उठा।

उषा की प्रथम किरणें खिड़कियों से छन कर मानव के हृदय परिवर्तन पर बधाइयाँ दे रही थीं।

श्रद्धा, भक्ति और विश्वास के साथ शीला ने भगवान् को प्रणाम किया। उसका रोम रोम पुलकित हो उठा था—खो कर, पाने के सुख का अनुभव आज शीला को पहले पहल हुआ था! हरिप्रतिमा अब भी मुस्कुरा रही थी, इस मुस्कान में अब 'दया' की पुट थी।

—

सन्तोष

विशाल भवन से तनिक हट कर बहुत दिनों की शून्य पुरानी झोपड़ी में अचानक एक दिन दीपक की ज्योति विकीर्ण हो उठी, और साथ ही एक शिशु का रुदन गूँज उठा।

पलङ्ग पर पड़ी नन्दिनी आश्चर्य और कौतूहल के साथ उठ कर खिड़की पर आ गई, और उसके पीछे-पीछे आई उसकी सफेद बिल्ली, झबरा कुत्ता, प्यारा खरगोश। बिल्ली उछल कर उसकी गोद में आ गई—नन्दिनी ने स्नेहपूर्वक उसकी कोमल पीठ पर उँगलियाँ फेर कर नीचे उतार दिया; झबरे मोती ने उसकी साड़ी का कोना दाँतों से खींचते हुए जैसे अपने अधिकार की फरियाद की; खरगोश का बच्चा उसके अञ्चल में दुबक गया।

नन्दा···नन्दा···! पति की आवाज सुन कर नन्दिनी कुछ चञ्चल-सी हो उठी। उसने तीनों जानवरों को एक ओर हटा दिया और अञ्चल का पल्ला सँभालने लगी।

पति प्रकाशचन्द्र ने पत्नी की व्यस्तता देखी; मुस्करा कर बोले—कितना बचपन है तुममें! अपने जन्मजात नारी-स्नेह

का अथाह भण्डार क्या तुम इन्हीं पशु-पक्षियों पर लुटा दोगी नन्दा ?

नन्दिनी का मुँह आरक्त हो उठा। उसने भ्रू-विक्षेप करके देखा उसके पाँव के पास तीनों चुपचाप आ बैठे हैं।

निरुत्तर पत्नी के मुख पर करुण व्यथा की छाया देख प्रकाश ने स्नेहपूर्वक अपने पास खींच कर कहा—नाराज हो गई नन्दा ? अरे, आज अभी तक तुम ऊपर नहीं गई, इतनी रात तक जागती ही रह गई ? बात क्या है ?

बात के बदले हुए विषय पर तनिक स्वस्थ-चित्त हो नन्दा शिथिल स्वर में बोली—आज उस पुराने मकान में कौन आया है।

सुना नन्दलाल की विधवा स्त्री है और शायद उसीका बच्चा।

वे लोग तो कुटुम्ब के ही व्यक्ति हैं न ?

प्रकाश ने हँस कर कहा—वृक्ष की तरह वंश की भी शाखाएँ होती हैं। शायद वैसी ही किसी शाखा के रिश्ते में वह मेरा भाई लगता था—उसके माँ-बाप बचपन में मर गए थे—मेरी अम्माँ ने ही उसे पाला-पोसा था। उसके बाद उसकी बड़ी भाभी भी उससे बहुत स्नेह करती थी। उनके मरने पर मुझसे अधिक वही रोया भी था। सचमुच चन्द्रा उसे बेटे से बढ़ कर मानती थी—पर नन्दलाल कितना कृतघ्न निकला, चन्द्रा की मृत्यु के दो ही सप्ताह बाद उसने घर छोड़ कर कहीं नौकरी कर ली।

फिर उनका विवाह······

टाई खोलते-खोलते प्रकाश ने कहा—हाँ, सुना था कहीं किसी गरीब स्वजातीय कन्या से उसने विवाह कर लिया था।

नन्दलाल के विषय में और कुछ जानने की इच्छा रहते हुए भी नन्दा ने देखा प्रकाश ने बात एक दम बीच में बन्द कर दी है, इससे चुपचाप वह खाने की थाली सजाने लगी।

अपने पालित पशु-पक्षियों को सुला कर नन्दिनी रात को जब सोने गई तब बारह से ऊपर हो गया था, पति गम्भीर निद्रा में मग्न थे। कुछ देर तक वह खिड़की पर खड़ी नीचे देखती रही, उसके बाद चुपचाप आकर पलङ्ग के एक कोने में पड़ रही।

पलङ्ग हिला, प्रकाश ने करवट ली और अस्पष्ट स्वर में कहा—कौन नन्दलाल···तुम···कहते क्या हो···आधा हिस्सा···?

नन्दिनी उठ बैठी। प्रकाश को जगा कर बोली—क्या सपना देख रहे हो ? प्रकाश ने आँखें खोल दीं, नन्दा का हाथ अपने हाथों में लेकर बोले—हाँ···ऐसा कुछ सपना ही देख रहा था, घड़ी देखो क्या वक्त है ?

नन्दिनी ने स्विच दबा कर कहा—पौने एक।

बड़ी देर तक नन्दिनी जागती रही। प्रकाश को भी नींद न आई। नन्दा ने पूछा-क्या तुमने नन्दलाल को सपने में देखा है?

हाँ, शायद देखा है—बात टालते हुए प्रकाश ने उत्तर दे दिया।

तो मुझे बताओ न क्या देखा है ?—नन्दा मचल उठी।

नन्दा का हठ प्रकाश जानते थे—एक छोटी-सी बात के लिए भी वह हजारों प्रश्न करके उनके दिमाग को खाली कर देती थी; इसलिए बोले—देखा, नन्दलाल मुझसे कह रहा है—मेरा जो कुछ हिस्सा चाचाजी ने लिया था, उसे वापस कर दीजिए। आपको ईश्वर ने बहुत दिया है।

मैंने कहा—मैं नहीं जानता पिताजी ने क्या लिया था क्या नहीं ?

उसने फिर कहा—ऐसा न कहिए भैया, चन्द्रा अभी इसकी साक्षी है। उन्होंने मरते मरते आपसे कहा था—नन्दलाल की चीज उसे वापस कर देना।

मुझे कुछ याद नहीं आता।

इसके बाद देखा—चन्द्रा धीरे धीरे मेरे पलङ्ग के पास आकर खड़ी हो गई और बोली—पत्नी के नाते तुम पर मेरा कुछ अधिकार है, लेकिन जाने दो उस अधिकार को, आज उसकी अधिकारिणी नन्दा है। लेकिन मेरा अनुरोध स्मरण करो। नन्दलाल का जो कुछ तुम्हारे पास है उसे वापस करो। उसकी सुकुमार पत्नी, फूल-सा बच्चा, दोनों अनाथ हैं, निराश्रय हैं। वे भूखों मरेंगे, उनके आँसू तुम्हारे सुख-वैभव को लूट लेंगे······।

प्रकाश का स्वर काँप गया। किन्तु ऊपर से दृढ़ हो कर बोले—सोओ अब, इस स्वप्न में कुछ रखा नहीं है।

सशङ्क-सी नन्दा बोली—क्या यह सब सच नहीं है ?

नहीं—कह कर प्रकाश तनिक हँस दिए—नन्दा मौन हो गई।

(२)

दोपहर को खा-पी कर नन्दा छत पर आ बैठी। प्रकाश आनरेरी मजिस्ट्रेट थे, वे कोर्ट चले गए। अकेली नन्दा महरी को कुछ काम सहेज कर बैठी-बैठी अपनी मिन्नो (बिल्ली) के लिए एक रेशमी साड़ी फाड़ कर एक अद्भुत पोशाक तैयार करने लगी। उसका मोर उसकी बगल में आ बैठा, खरगोश गोद में आ दुबका, मोती पाँव के पास आ बैठा और बिल्ली सामने बैठी···।

एकाएक जीने के दरवाजे को खोल कर एक स्त्री निकली और चुपचाप उसके पाँव के पास आ बैठी। उसने धीरे-धीरे हाथ बढ़ा कर उसके पाँव छुए और शिशु को गोद से उतार कर उसने प्रणाम कराया।

नन्दा चकित अवश्य हुई लेकिन पहचानने में उसे देर न लगी, पर अभिवादन का एक छोटा उत्तर भी उसे न सूझा। अपने उन चकित नेत्रों से ही उसने क्षण भर में युवती का अङ्ग-अङ्ग देख डाला। शरीर पर आभूषण तो क्या साड़ी भी न थी। पर उसके मुख पर एक अद्भुत शान्ति और करुणा का सम्मिश्रण था। अपने उन्हीं मलिन वस्त्रों में वह कुशल शिल्पी की बनाई हुई श्वेत प्रतिमा-सी लग रही थी। इस सुन्दर युवती पर वैधव्य

अपनी छाप छोड़कर भी उसका सौन्दर्य नहीं हरण कर सका था। कदाचित् सौभाग्य से भूषित उस चपल सौन्दर्य से इस शान्त सौम्य रूप में भी वह अधिक मोहक दीख रही थी। नन्दा को मौन देख कर राधा कुछ अप्रतिभ-सी हो उठी। उसने बालक को अपनी गोद में खींच लिया।

नन्दा के मौन रहने पर भी उसके पक्षी चहचहा उठे। झबरे मोती ने दो बार भूँक कर आनेवाली को अपरिचित घोषित कर दिया, बिल्ली सहम कर स्वामिनी की साड़ी में जा छिपी और मोर पङ्ख फड़-फड़ा कर अलग हो गया।

राधा ने मौन तोड़ा। बोली—शायद आपने मुझे पहचाना नहीं जीजी?

पहचान लिया—नन्दा कह गई अनजान मे, जैसे उसके भीतर से कोई अपने आप बोल उठा।

इसके बाद कुछ कहने-सुनने की गुञ्जाइश न देख कर राधा उठ खड़ी हुई और बोली—अब आज चलती हूँ, फिर आऊँगी।

अच्छा कह कर नन्दा बैठी ही रह गई।

खुले जीने से राधा चुपचाप उतर गई। अब नन्दा को जैसे होश हुआ। अपने ही ऊपर कुछ खीझ कर वह सोचने लगी, कितना असभ्य समझा होगा उसने मुझे! मैं भी कितनी मूर्खता कर बैठी, न बोली न उसका हालचाल पूछा, न बच्चे को लिया। इन पशु-पक्षियों के लिए मैं जान देती फिरती हूँ, जाने कितने व्यङ्ग-उपहास उनके चुपचाप बरदाश्त किया करती हूँ, और उस

बच्चे की ओर आँख उठा कर जी भर देख भी न सकी। कितना सुन्दर बच्चा है! बिलकुल माँ के अनुरूप! एक क्षण के लिए वह जैसे सब कुछ भूल गई। ओह, कहीं वह मेरा अपना होता, इस शून्य प्रकोष्ठ को उसकी तुतली बोली···माँ-माँ की पुकार स्वर्ग बना देती। कौन कहेगा राधा अभागिन है, सौभाग्य मिट जाने पर भी उसकी आशाओं का संसार कितना फूला-फला होगा। उसका नारी-जीवन सार्थक हुआ है, उसके उजड़े जीवन पर फिर हरियाली आएगी। कौन जाने उसकी इस जीर्ण झोपड़ी की जगह कभी इससे भी ऊँचा भवन खड़ा हो, कौन जाने भविष्य में वह कोई महान कवि हो, कलाकार हो, विद्वान हो; राधा—आज की दुर्भाग्य में पिसी राधा—कभी राजमाता हो; उस दिन आज के किए गए मेरे इस अनादर-अपमान को स्मरण करेगी तब···

नन्दा का जी हुआ अभी अभी चल कर राधा से क्षमा माँगूँ; लेकिन दूसरे ही क्षण उसके विचार बदल गए, वह उठ कर कमरे में चली गई। आज पशु-पक्षियों में वह अपना चित्त न लगा सकी।

(३)

शाम का जलपान करते-करते प्रकाशचन्द्र ने पूछा—वह आई थी?

कौन?

नन्दलाल की स्त्री।

आई थी।

कुछ कहा उसने ?

कुछ नहीं—

पूछा नहीं तुमने ?

बिल्कुल नहीं।

जरूरत भी नहीं। सुना है पास-पड़ोस के लोग उसका पक्ष ले कर मेरी बदनामी कर रहे हैं—प्रकाश ने पत्रों पर से दृष्टि हटा ली।

क्या ?

लोगों का कहना है, मुझे उन दोनों का खर्च उठाना चाहिए, आदर सम्मान के साथ घर में रखना चाहिए, मेरे पिता उसी के धन से धनी हुए—प्रकाश ने कहते-कहते इस गम्भीर अपवाद को अपनी हँसी में उड़ा दिया।

नन्दा बोली—लेकिन उन्होंने तो कुछ भी नहीं कहा। फिर आने को कह गई हैं।

प्रकाश ने चाय की प्याली मेज पर रखते हुए कहा—नहीं, यह सब सिलसिला ठीक नहीं, समझती हो न तुम ?

समझती हूँ—नन्दा दूसरा कप चाय से भरने लगी।

प्रकाश ने हँसकर कहा—दुर्भाग्य के इस कठोर प्रहार के बाद भी इतना अभिमान है—अगर सचमुच वह एक निरापद आश्रय ही चाहती थी तो यहाँ आकर क्या मेरे ही यहाँ वह नहीं ठहर सकती थी ? सुना नन्दलाल मरते समय कह गया है कि मेरे पिता की बची हुई सम्पत्ति इतनी है कि तुम अपने बच्चे को पाल-पोस कर शिक्षित बना सकती हो।

नन्दा सर से पाँवतक कण्टकित हो उठी। बोली—तो क्या यह सच नहीं है?

नहीं, यह मेरी बदनामी के लिए केवल अपवाद मात्र उठ खड़ा हुआ है।

सहसा खरगोश उछल कर मेज पर जा बैठा। नन्दा ने घबरा कर उसे सँभाला, प्रकाश ने मुस्करा कर व्यङ्ग किया। नन्दा का मुँह लाल हो गया।

बचे हुए बिस्कुट के टुकड़े को प्रकाश ने नीचे फेंक कर झबरे और मिन्नो (बिल्ली) को खिलाया और उठ खड़े हुए। सामने टँगे चन्द्रा के चित्र पर दृष्टि पड़ी—लगा जैसे उसकी मूक आँखों में अपार घृणा छिपी झाँक रही है—जल्दी-जल्दी वे कमरे से बाहर हो गए।

(४)

सप्ताह से अधिक बीत गया—राधा फिर नहीं आई। नन्दा की इच्छा कई बार हुई उसे बुलाऊँ, पति पर अविश्वास न करके भी उसे विश्वास न होता था। उनकी उखड़ी-उलझी बातें स्मरण कर कभी-कभी उसका हृदय आशङ्का से भर उठता। उसे याद आता चन्द्रा ने स्वप्न में कहा है—वे माँ-बेटे भूखों मरेंगे, उनके आँसू तुम्हारे सुख-वैभव को लूट लेंगे। सती का शाप पति के लिए कभी मिथ्या न होगा। दिन भर में बीसों बार वह खिड़की पर आती, देखती उस जीर्ण कुटी के द्वार पर नन्दलाल का शिशु घुटनों से चलता, खेलता, किलकारियाँ भरता,

मचलता, रूठता...कितना सुख था उस झोपड़ी के द्वार पर! दुनिया का हास-विलास राधा के द्वार पर लोटता, सन्ध्या होती दीपक की एक क्षीण ज्योति झोपड़ी के टूटे फूटे हिस्से से झाँक कर उस बिजली से जगमगाते भवन का जैसे उपहास करके कहती—एक ही कुल की वधुओं का निवास दोनों में है—आ देख दोनों में सचमुच कौन बड़ा है ?

नन्दा गम्भीर निश्वास ले कर हटती, फिर आती—घण्टों आत्म-विस्मृत-सी खड़ी रहती। पशु-पक्षियों में अब उसका अनुराग कम हो चला।

दिन सप्ताह के और सप्ताह महीनों के रूप में बढ़ते गए। नए वर्ष का नया दिन करीब आ गया।

(५)

नन्दा के घर आज बड़ी चहल-पहल है। प्रकाशचन्द्र को राय साहब की उपाधि मिली है। बधाइयों के पत्र और तारों का ताँता लगा है। नीचे गरीब-कँगले खिलाए जा रहे हैं, ऊपर अंग्रेजी डिनर का इन्तजाम हो रहा है। अलग एक कमरे में अफसरों की डालियाँ लग रही हैं। प्रकाश प्रबन्ध में व्यस्त हैं। नन्दा भी दौड़धूप कर रही है लेकिन वह आज उदास है, विषादकी मूर्ति-सी लग रही है। अचानक प्रकाश को कुछ याद आया। पत्नी के पास आ कर बोले—अगर ठीक समझो तो नन्दलाल के यहाँ कुछ भेज देना, आयेगी तो शायद वह नहीं।

नन्दिनी का मुख एक क्षण के लिए खिला, फिर मुरझा गया

बोली—नहीं, कुछ भी भेजने की जरूरत नहीं और बगैर बुलाए वह आएगी ही क्यों ?

प्रकाश ने फिर कोई तर्क न किया—लौट कर इधर-उधर का काम देखने लगे। नीचे भूखे-कँगलों ने तृप्तिकर भोजन पा कर जय-जयकार की। प्रकाश मुस्कुरा उठे।

बड़ी रात बीते नन्दा खाली हुई। उसकी सखी-सहेलियाँ कुछ तो बिदा हो गईं कुछ नाच-तमाशे में व्यस्त थीं। प्रकाश ने आकर देखा नन्दा खिड़की के पास चुप-चाप खड़ी है। स्मित हास्य ओठों में भर कर वे विनोद के भाव से बोले—नन्दारानी, तुम्हारे वे डेढ़ दर्जन बाल-बच्चे सब खा-पी चुके या नहीं, और तुम...तुम तो आज बहुत थक गयी होगी ?

राधा की झोपड़ी में फिर दीपक जल उठा। नन्दा पति के इस सरस विनोद में भाग न ले सकी, वैसी ही गम्भीर मुद्रा में बोली—मुझे पता नहीं वे सब कहाँ हैं !

प्रकाश खिड़की के निकट आए। नन्दा की दृष्टि का अनुसरण कर के बोले—वहाँ, उसके यहाँ खाना भेजने के लिए मैंने सहेज दिया था। आओ ऊपर चलें।

नन्दा चुप खड़ी रही। प्रकाश ने कपड़े बदले, पान लिया और सोने चले गए। घड़ी भर पहले के कलरवपूर्ण घर में एक-दम शान्ति छा गई।

नङ्गे पाँव नन्दा धीरे-धीरे उतरी, दरवाजा खोल कर बाहर आई, एक मिनट कुछ सोचती रही; फिर राधा की झोपड़ी के पास आ कर उसने पुकारा—सन्तोष !

राधा ने उठ कर द्वार खोल दिया—सामने इतनी रात को नन्दा को देख कर वह अवाक हो उठी—कौन ? जीजी ? आइए, भीतर आइए न !

नन्दा के पाँव अपने आप भीतर बढ़ गए—उसने देखा छोटी चौकी पर एक चादर ओढ़े सन्तोष सो रहा है, पास ही अँगीठी में आग रखे दीपक की क्षीण ज्योति में राधा बैठी शायद चर्खा कात रही थी। पास ही कुछ अधसिले कपड़े, थोड़े से रेशम-पोत और नीले साटन के टुकड़े रखे हुए हैं। उसे यह समझते देर न लगी कि यही माँ-बेटे की जीविका के साधन है ! पाँव छूती हुई राधा को उठा कर उसने गले से लगा लिया। बोली—हजारों कण्ठों का आशीर्वाद ले कर भी आज मैं तुमसे कुछ माँगने आई हूँ।

चकित-सी राधा बोली—मुझसे ? परिहास न कीजिए जीजी, क्या दे सकूँगी मैं ?

नन्दा एक क्षण असमञ्जस में खड़ी रह कर बोली—तुम जानती हो और मैं भी जानती हूँ। तुम्हारा जो कुछ उनके पास है, उसे एक बार भी न माँग कर इस तरह कब तक कष्ट उठाओगी राधा ?

राधा के रूखे अधरों पर एक करुण मुस्कान नाच उठी; बोली—इस कष्ट के बदले में सुख की आशा ले कर मैं नहीं बैठी हूँ जीजी ! मुझे सन्तोष को केवल पालपोस कर शिक्षित बना देना है; वह अमीर हो, बड़ा आदमी हो, यह मैं नहीं चाहती। वह गरीब रहे, गरीबों का कष्ट समझे, दीनदुखियों का सेवक हो, बस इतनी ही आशा ले कर मैं अपना, अपने स्वामी का कर्तव्य,

पूरा कर रही हूँ। दादाजी (प्रकाश) से मैंने कुछ माँगा नहीं; माँगने की आवश्यकता न रही हो ऐसी बात नहीं, लेकिन उन पर ऋण का अधिकार ले कर कुछ माँग सकना मेरे लिए असम्भव था—एक ही माँ की स्नेह छाया में उनके साथ मेरे स्वामी ने बचपन बिताया है। उसका भी मूल्य क्या आँका जा सकता है?

किन्तु अगर मैं उसे चुकाना चाहूँ?—नन्दा बोली।

तो भी मैं उसे स्वीकार न करूँगी जीजी! मुझे विश्वास है मैं अपने कुल की लाज बचाते हुए सन्तोष को बड़ा आदमी न सही, मनुष्य बना लूँगी। और सहज आत्मगौरव की गरिमा से राधा का नन्हाँ-सा मुँह दीप्त हो उठा।

नन्दिनी को लगा जैसे राधा के भीतर से कोई और ही बोल रहा है। एक गहरा निश्वास ले कर बोली—तो मैं योंही लौट जाऊँ?

मुझ अकिञ्चन का सब कुछ तुम्हारा है जीजी!

तो फिर मुझे दो अपना-सा स्वाभिमान, अपना-सा आत्मबल और अपना, हाँ अपना ही सा सन्तोष।

राधा ने कुछ ही क्षण में नन्दा के हृदय से बोलनेवाले इन शब्दों का अभिप्राय समझ लिया और सोते हुए शिशु को उठा कर नन्दा की गोद में दे दिया। नन्दा आनंद में विह्वल हो बोली—राधा अब तुम्हारा संतोष हमें भी मिला। अब यह हमारा संतोष हमारे इस लोक और परलोक दोनों में हमारा सहारा होगा और इसके माता-पिता हम होंगे। नन्दा को अपना संतोष दे कर भी राधा ने अपना संतोष नहीं खोया।

घर की लाज

खत पढ़ कर लता सन्नाटे में आ गई—दूसरी लाइन उसने कई बार पढ़ कर देखा बिल्कुल ठीक साफ अक्षरों में लिखा है—लता जीजी ! तुम्हें सुन कर खुशी होगी, मैं अब जल्दी ही तुमसे मिलूंगी, जरूरी काम से वे कानपुर जा रहे हैं। मैं भी साथ ही आ रही हूँ। कई बार पढ़ने के बाद वह झुंझला सी उठी—उफ मुक्ता तेरा बचपन अब तक न गया, यह भी क्या हिमाकत है, वे जा रहे हैं मैं भी साथ आ रही हूँ ! जरा भी समझ नहीं। तभी छोटा बच्चा एक दम चौंक कर रो पड़ा। वह उठ कर बच्चे को चुप कराने लगी।

उसके विचारों के तारतम्य जुड़ने लगे। मुक्ता ओह कितनी खुशमिजाज लड़की है रानी सी। बचपन से भरी, अल्हड़पन से शराबोर और प्यार की पुतली···और मैं···मै भी तो उसीकी उम्र की हूँ। ज्यादा से ज्यादा २-३ साल बड़ी हूँगी। हॉ, मेरा पचीसवाँ चल रहा है और वह तेइसवें के बीच में है। लगता है मैं २० वर्ष और ज्यादा बड़ी हूँ। हॉ मेरे ब्याह का यह आठवाँ साल बीत रहा है, और उसने अभी तीन महीने हुए नई

दुनियाँ देखी है।" तीन महीने ब्याह के हुए, सुना है कमल किशोर बड़े अच्छे हैं, डाक्टर हैं, सूरत शकल से भी अच्छे हैं। मुक्ता के साथ उनकी जो फोटो अखबारों में निकली है, बहुत अच्छी है, मुक्ता के भाग्य बड़े तेज़ थे।

कुछ देर के लिए वह अपनी बचपन की दुनियाँ में जा बैठी—मुक्ता पड़ोसी बैरिस्टर की लड़की थी, दोनों साथ-साथ खेलीं, साथ साथ पढ़ीं, लड़ाई झगड़े भी हुए, मान अभिमान भी हुए लेकिन कुछ ही क्षणों के लिए! फिर दोनों दूध पानी की तरह मिल कर एक हो गईं। मैट्रिक पास कर वह एक ग्रेजुएट पति की पत्नी बन गई और मुक्ता ने कालेज ज्वाइन किया था, विवाह के दो साल पहले ही उसने एम. ए. कर लिया था। और स्वयं आज उसके विवाहित जीवन की रंगरेलियाँ स्वप्न की तरह कब की बिदा हो चुकी थीं, और पाया था उसने मूल्य में ४-५ बच्चे, पति का शुष्क रूखा स्वभाव। अभाव और अपूर्णता के बीच घिरी उसकी गृहस्थी हर साल बढ़ती जा रही थी। घर में वैसे भी कम आदमी न थे। पति सास दो नन्द पाँच बच्चे वह स्वयं। नवीन को महीने में कुल ४०) मिलते, मुशकिल था घर का खर्च चलना, मेहमानों की खातिरदारी होती ही कहाँ से। पिछले साल जाली और कसीदे बना-बना कर उसने कुछ रुपये बचाए थे, कुछ उधार लेकर बड़ी नन्द आशा का ब्याह कर सकी थी, तबसे ५) बराबर कटते जा रहे थे। ३५) में खर्च पूरा नहीं पड़ता, 'समय' और महँगी ने बड़ों-बड़ों पर असर किया है, उसकी क्या बिसात? लेकिन भले ही वह अपने घर में

रूखा-सूखा खाती हो, फटा-पुराना पहनती हो, डाट-फटकार कलह-विवाद भी उस घर के लिए नई चीज नहीं—पर क्या मुक्ता के सामने भी वह अपना असली रूप खोल कर दिखा सकेगी ? कदाचित् सम्भव नहीं। घर की लाज घर की लक्ष्मी के हाथ रहती है, भले ही मुक्ता प्रिय सखी हो लेकिन उसे अपने साथ अपने पति के घर की लाज जो जबरदस्ती उसके हाथों सौंप दी गई है, बचानी है······।

तभी शायद नवीन नहाने के लिए जाते हुए आँगन में कहता गया, खाना तैयार करो—मैं अभी आ रहा हूँ।

सास के पिछले शब्द उसके कानों में गूँज उठे,—पहले ही कहती थी बेटा कालेज की लड़की मत ले आ। रोज रोज बहाने··· ··।

नहीं अम्माजी आती हूँ, मुन्नू जरा रो पड़ा था। कह कर लता बच्चे को चारपाई पर डाल कर एक दम रसोई घर में जा घुसी—

मुश्किल से २० मिनट बीते होंगे, नवीन चौके के द्वार पर था—लाओ जल्दी खाना दो देर हो रही है। लता संकुचित सी कभी स्वामी की ओर कभी चूल्हे पर चढ़ी पतीलियों की ओर देखती हुई बोली—दाल अभी गल नहीं पाई, अच्छा बैठो रोटिया सेकती हूँ, साग तैयार है।

नवीन क्षुब्ध-सा बैठ गया, लता थाली परस कर रखती हुई बोली—मुक्ता का खत आया है पढ़ा तुमने।

रोटी सेकों मुझे इतनी फुर्सत नहीं—

नवीन रुखाई के उत्तर दे कर चुपचाप खाने लगा। पर लता अब करती क्या, विचित्र परिस्थिति थी, कल ही सुबह वह आ पहुँचेगी—लता के गले मिल कर कहेगी रात भर सर्दी से ठिठुर गई जीजी। तब लता का क्या यह कर्तव्य न होगा कि वह उसे गर्म चाय के साथ अपनी कुछ मीठी-मीठी बातों को मिला कर मुक्ता के शरीर में गर्मी और प्रफुल्लता भर दे?

रोटियाँ सेंकती सेंकती वह बोली—कल इतवार भी तो पड़ रहा है और कल ही वह आ भी रही है, डाक्टर साहब किसी काम से यहाँ आ रहे थे, वह भी आ रही है—

पत्नी के स्वर में दीनता की टङ्कार थी—नवीन कुछ सतर्क हुआ बोला—कहाँ ठहर रही हैं?

यह तो कुछ लिखा नहीं···लता बोली—

बड़े आदमी हैं किसी होटेल में ठहरेंगे, जा कर एक बार मिल आना बस हो गया।

नवीन चौके से उठ गया—चौके की चीजें ढँक कर लता भी निकल आई—

सास, बच्चों और ननद उषा को खिला कर वह घर की सफ़ाई में जुट गई, पड़ोस से उसने चाय के सेट मँगाये। उसे मालूम है मुक्ता चाय की कितनी शौकिन है। फिर बच्चों के कपड़े साफ किए, नन्दों की साड़ियाँ धोईं, बाल साफ किए, चोटी गूँथी, सब को दुरुस्त कर रात उसने सोते जागते बिता दी। सुबह नाश्ते की तैय्यारी में वह बच्चों को सोता छोड़ कर जुट गई, सड़क पर जाती हुई वह हर एक टैक्सी टाँगे को

खिड़की से झाँक कर देखती। ७ बज गए उठ कर बच्चों का मुँह धुलाने लगी।

बूढ़ी सास झुँझला कर बोली—हर वक्त बस एक ही काम। कहीं अपनी सफाई कही बच्चों की। जाड़ों का दिन ठंढ लगते क्या देर लगतो है ?

सोढ़ियों पर खट्-खट् आवाज बड़ी कोमल लगो—लता मुँह फेर बैठी—बच्चे माँ को इस करुण विवश मूर्ति को देख कर जैसे समझने की चेष्टा कर रहे थे। तभी मुक्ता आकर उसके गले से लिपट गई। अपनो धुएँ से मटमैली साड़ी और मुक्ता की रेशमो साड़ी देख कर लता शर्म से गड़ी जा रही थी, उसने अपने कमरे मे ले जा कर मुक्ता को बैठाया, पर मुक्ता में बचपन की वही शोखी वही चञ्चलता अब भी थी। दो मिनट मे वह बच्चों को ले कर पूछने लगी, यह गुड़िया यह राधिका, वह प्रकाश, मुन्ना और वह बिजली·· एक दो तीन चार पाँच ओफ और बड़ी तरक्की की तुमने और छठाँ वह शायद जल्दी ही अवतीर्ण होगा ! पूरे आधे दर्जन······।

लज्जित-सी लता बोली—चुप। क्या बातें करती है ? अरे यह तो बता अपने उनको कहाँ छोड़ आई ?

मै तो उन्हें नहीं छोड़ आई, वही मुझे यहाँ छोड़ कर शर्मा-जी की कोठी पर चले गए। खतरनाक एक्सीडेन्ट हुआ है। उनको लड़की की पूरे पाँव को हड्डी खराब हो गई है। हाँ जीजाजी कहाँ हैं ? मुझसे मिल कर तबियत भर गई क्या ?—लता मुस्कराकर बोली।

तुम ठहरी बच्चों की माँ, गम्भीरता की गरिमा तुम्हारे चारों ओर घिरी हुई है। देखूँ तो जीजाजी पर इसका क्या असर पड़ा ? पहले तो वे बहुत ही हँसमुख और विनोद-प्रिय थे।

अच्छा जलपान कर लो फिर मिल लेना, लता साड़ी का पल्ला सँभालती हुई चौके में लौट आई। पर यह क्या चाय की पतीली जमीन पर औंधी पड़ी थी चूल्हा एक दम बुझा हुआ था।

ठण्ढा हलुवा और बासी समोसा मुक्ता के सामने रखती हुई लता बोली—इसे खा कर चलो तुम नहा डालो, तब तक चाय मैं लाए देती हूँ।

नहीं-नहीं तुम बैठो जीजी ! चाय आ जाएगी। इतने दिनों पर मिली हो, पहचानी नहीं जाती, रंग भी कितना साँवला पड़ गया है।

मेरी तरह जब तुझे भी ४–५ बच्चे हो जाएँगे तब अपने को देखना।

मुक्ता खिलखिला कर हँस पड़ी जैसे कोई कली प्रभात वेला में चिटक जाती हो। हल्वे की तश्तरी खींच कर बोली—बस-बस अब चाय की जरूरत नहीं है, स्टेशन पर हम लोग चाय पी चुके हैं दीदी।

और तेरा सामान सब कहाँ रह गया—लता ने संकोच के साथ पूछा।

सामान सब वहीं चला गया। वे वहीं ठहरेंगे भी पर मैं तो इन दो दिनों में तुम्हें छोड़ने की नहीं। अपनी कोई साड़ी लाओ बदल लूँ। अभी नहाया नहीं। बाथरूम की कहीं कोई गुंजाइश

थी नहीं । लता अपने ही कमरे में पानी रख कर लक्स की डिबिया खोज लाई, साड़ी इधर तो कोई खरीदी नहीं, और जो थीं भी पहनी और पुरानी—ब्याह के वक्त की एक गुलाबी साड़ी अब तक बच रही थी । पूजा-पाठ या किसी विशेष अवसर पर ही वह निकलती थी। उसे ही निकाल लाई, शमीज और ब्लाउज की समस्या मुक्ता ने स्वयं यह कह कर हल कर दी कि मैं इसी को बदल लूँगी ।

जब तक मुक्ता नहाती रही, लता जल्दी-जल्दी कुछ काम निबटा कर पति के निकट आ कर बोली—मुक्ता आ गई है, दो दिन ठहरेगी, डाक्टर साहब कोठी में ठहरे हैं लेकिन मुक्ता यहीं रहना चाहती है। नवीन लेटा हुआ अखबार पढ़ रहा था, सर उठा कर बोला—तो मैं क्या कर सकता हूँ ? घर की स्थिति तो तुम्हें मालूम ही है ।

सो इसके लिए मैं कुछ नहीं कहती, कम से कम दो दिन के लिए चाहती हूँ अपने प्रति तुम्हारी उपेक्षा का रूपान्तर।

रूपान्तर ? वह कैसा ?—नवीन उठ कर बैठ गया ।

वह इसलिए कि मैं नहीं चाहती मुक्ता मेरी असली स्थिति का पता पा सके, वह मेरी अभिन्न है, बहुत प्रिय सखी है लेकिन मैं नहीं चाहती वह जाने दुनियाँ में अनेक अभावों के साथ-साथ पति के प्यार से भी मैं वञ्चित हूँ । समय और परिस्थिति अपने वश की नहीं और मैं स्त्री हूँ पत्नी और माता भी हूँ । कठिन से कठिन दुःख और कष्ट बरदाश्त करने की क्षमता रखती हूँ ।

लेकिन दुनियाँ के सामने सिर उठा कर, नीचा कर के नहीं। और तुम जानते हो नारी का गौरव क्या है ?

शायद नहीं जानता लता—नवीन के स्वर में विरसता न थी। विस्मय था और एक उत्सुक उत्कंठा ?

जानने की आवश्यकता भी नहीं है, मेरी माँग चिर दिन के लिए नहीं केवल दो दिनों के लिए है। पत्नी के नाते गृहिणी और सहचरी के नाते, इतने की अधिकरिणी मैं हूँ।

तुरन्त लता लौट गई उत्तर की प्रतीक्षा उसने न की।

चाय की ट्रे ले कर लौटते-लौटते उसे कुछ देर अवश्य हुई लेकिन कमरे के द्वार पर आ कर उसने जो देखा उसे देख कर वह एक क्षण के लिए विह्वल-सी हो उठी।

कितने दिनों के बाद आज नवीन के होठों पर हँसी दीखी थी—वह हँसता न हो ऐसी बात नहीं लेकिन ज्यों-ज्यों पारिवारिक बोझ बढ़ता गया उसकी हँसी उसकी विनोद-प्रियता चिड़चिड़ाहट का रूप लेती गई। क्रमशः ऐसा भी हुआ कि वह बाहर भले ही हँस-बोल लेता, घर में कदम रखते ही जैसे एक भारी बोझ से उसकी गर्दन दब उठती, और उस बोझ से अपने को दबा पा कर वह कभी पत्नी पर, कभी बच्चों पर, कभी माँ पर अकारण झल्ला उठता।

और आज सहज ही पत्नी पर दृष्टि पड़ते ही नवीन सरस स्वर में बोला—चाय लाई हो ? चाय का वक्त अब रहा तो नहीं लेकिन तुम्हारे हाथ की चाय मैं छोड़ने का नहीं, जानती हो मुक्ता! चाय मैं क्यों कम पीता हूँ। तुम्हारी जीजी-सी चाय कोई बना

भी तो नहीं पाता और उसी उत्फुल्ल हँसी से उठ कर उसने लता के हाथ से चाय की ट्रे उतार ली—

तीनों ने साथ बैठ कर चाय पी, देर तक हँसी विनोद के साथ बातें होती रहीं। आज नवीन ४०) महीने का क्लर्क न था, आठ वर्ष पहले का बी. ए. का छात्र, जिसके सामने भविष्य का रंगीन सपना था और जीवन सहचरी के रूप में लता-सी सुन्दर शिक्षित पत्नी।

तीसरे दिन मुक्ता पति के साथ लौट रही थी। स्टेशन पर नवीन सपत्नीक खड़ा था। ट्रेन छूटते-छूटते मुक्ता गले मिली और अपने चपल गाम्भीर्य स्वर में बोली—लता जीजी, आठ वर्ष बाद भी तुम्हारे इस सुखद दाम्पत्य-जीवन को देख कर मुझे कितनी खुशी हो रही है। सुना करती थी—विवाह के साल दो साल बाद प्रेम का कुछ और ही रूप रहता है, लेकिन कितना गलत अनुभव है, तुम्हे किन शब्दों में बधाई दूँ ?

लता के कपोलों पर लाली दौड़ गई। पति की ओर एक दृष्टि डाल कर सहज मुस्कान से बोली—ईश्वर करे मेरी मुक्ता के जीवन की नूतनता भी इसी तरह असीम और अनन्त हो ?

ट्रेन छूट गई थी—छलछलाई आँखों से लता चुपचाप खोई सी खड़ी थी।

नवीन रूखे स्वर में बोला—आखिर अब घर चलना है कि नहीं ?

तनिक विस्मय से देख कर वह मलिन स्वर में बोली—हाँ चलती हूँ अब।

और पति के पीछे-पीछे चल पड़ी वह, उसी नीड़ में जहाँ—गत आठ वर्षों से, पत्नी, मासी और गृहिणी बन कर वह रहती आई थी।

पति के रूखे शब्दों को लक्ष्य कर के भी वह आज दुःखी नहीं हुई। उसके घर की लाज, उसमें निहित नारी का गौरव ससम्मान बच गया था इतना क्या कम है?

पुकार

चित्ररेखा के जीवन में पैंतीस बसन्त अपनी बहार लुटा कर विदा हो चुके थे !

किन्तु अब भी रूप के हाट में जितनी उसकी प्रसिद्धि थी उतनी शायद किसी की नहीं। बीस साल पहले उसे एक कुशल नर्तकी की भाँति जिन लोगों ने देखा था वे भले ही समय पाकर वृद्धत्व प्राप्त कर चुके हों, किन्तु चित्ररेखा तबकी एक अल्हड़ बालिका आज भी एक विख्यात युवती नर्तकी बनी रही।

उसके विषय में अनेक किम्वदन्तियाँ थीं। कोई उसे ईरानी कहता तो कोई कश्मीरी। कुछ लोग उसे एंग्लो-इण्डियन युवती समझते, पर सचमुच वह क्या थी कोई कभी न जान सका।

अनेक महफिलों में उसने अपनी कला का अच्छा परिचय दिया था। बंगालियों की महफिल में अगर उसने बङ्गला गान गाया था तो अपने सधे हुए लोचदार गले से अनेक श्लोकों को गाकर भी उसने दर्शकों पर मोहनी डाल दी थी। बड़े बड़े प्रोग्राम में उसने अनेक बार हिन्दी अंग्रेजी और फारसी के शेर गाकर श्रोताओं को मुग्ध कर लिया था।

किन्तु अब इस पैंतीसवें वर्ष में आ कर उसका नारीत्व व्याकुल हो उठा। कार्यक्रम पूर्व की भांति अवश्य चलते रहे किन्तु अब उसका उत्साह, उसकी चपलता जैसे शिथिल होने लगी। घंटों शीशे के सामने खड़ी वह अपने को देखती। रूप अब कहाँ, पर रूप में अब भी वह सौन्दर्य श्रेष्ठ है। रंग ? अब भी वैसा ही कुन्दन-सा चमक रहा है। फिर आँखें ? नहीं आँखें तो अब भी उतनी ही चञ्चल उतनी ही मादक हैं जैसी आज से बीस वर्ष पहले थीं और दर्शकों पर जादू डाल देती थीं। पर मन की यह अतृप्ति कैसी और कैसी यह अशान्ति ? धन का कोष भरा है, वस्त्राभूषणों से आलमारियाँ सजी पड़ी हैं। फिर क्या वृद्धत्व ! नहीं नहीं, वृद्धत्व तो अभी उससे बहुत दूर है। यह तो एक प्यास है, जीवन में सब कुछ पाकर भी वह प्यासी है। यह एक ऐसी तृषा है जो कदाचित कभी मिट नहीं सकेगी। तड़प उठा चित्ररेखा का अंग-अंग। रेशमी साड़ी फड़फड़ा कर नागिन-सी उसे डसने लगी। सुखद शैय्या आग-सी जलने लगी। शरीर-शोभा दूनी करनेवाले गिने चुने आभूषण उसके अंग अंग को काटने लगे।

उठ कर खुली छत पर वह टहलने लगी। वासन्ती पवन का झोंका ओस में भींगा हुआ उसके साथ अठखेलियाँ करने लगा। ऊपर जो सप्तमी का चन्द्र व्योमसागर को पार करने में संलग्न था, चित्ररेखा एक टक उसे देखने लगी। उसके मन का यह द्वन्द्व नया नहीं है। अनेक बार इसी प्रकार विकल हो कर वह घंटों शून्य आकाश की ओर ताकती ताकती निद्रा की गोद में पड़ती। घंटों

उसका मन अतीत की ओर भटकता। मन और मस्तिष्क का विप्लव घंटों चलता। कुछ याद नहीं आता, क्या थी वह और क्या हो गई। होश आने के बाद जिस विलास वैभव में उसने अपने को पाया वह यद्यपि आज सा नहीं था, लेकिन उसके चारो ओर हमेशा आदर प्यार की वर्षा सी होती रहती। कदाचित् आशाप्रद भविष्य की उज्ज्वलता ही इसका कारण थी।

कमरे में लगी अलार्म घड़ी ने टन् टन् करके दो बजाए। चित्ररेखा चौंक पड़ी, चन्द्रमा अब दूर खिसक गया था। उसकी साड़ी ओस में भींग कर अंग-अंग से चिपक गई थी। छत पर लगे गमलों के फूल विकसित हो रहे थे; वायु का झोंका अब उसके अंग-अंग में चुभ रहा था। लौट पड़ी वह। कमरे के उन्मुक्त द्वार पर एक क्षण के लिए खड़ी हो कर उसने सुना नीचे कोई द्वार खटखटा रहा है।

इतनी रात को यह खट्-खट्? उसे आश्चर्य हुआ, थोड़ा कौतूहल भी। प्रायः उसके परिचितों और अपरिचितों में सभी लोग जानते थे कि चित्ररेखा का द्वार ग्यारह बजे के बाद बन्द होता है और सम्पूर्ण रात्रि वहां व्यतीत करने का सौभाग्य आज तक किसी को नहीं मिला है, फिर इतनी रात को कौन?

खड़खड़ाहट बढ़ती गई। उसने परिचारिका को पुकार कर आज्ञा दी—द्वार खोल दो। आँखें मलती हुई परिचारिका एक क्षण असमञ्जस में खडी रह कर बोली—खोल दूँ इतनी रात को? खोल दो। आदेश दे कर वह दूसरे कमरे में जा कर कपड़े बदलने लगी।

सादी आबरवाँ की गुलाबी साड़ी, ऊन का गरम सलूका पहन कर जब वह वापस लौटी तब परिचारिका वापस आ गई और उसके साथ-साथ आया था एक दुबला पतला लम्बे कद का सुन्दर-सा बालक, उम्र ९-१० के बीच। जाड़े से काँपता ठिठुरता चकित सभीत आँखों से वह कमरे की प्रत्येक चीज पर दृष्टि डालता जैसे अपने योग्य आश्रय की खोज कर रहा था।

माँ ! द्वार से प्रविष्ट होती हुई चित्ररेखा पर दृष्टि पड़ते ही वह चिल्ला उठा। और दूसरे ही क्षण अपनी धृष्टता सोच कर वह जैसे सहम उठा। चित्ररेखा का अङ्ग-अङ्ग पुलक उठा। माँ की एक पुकार ने जैसे उसे अपने निकट खींच लिया। वह लड़के के निकट आ गई और प्यार से हाथ पकड़ कर बोली—डरो नहीं बताओ कौन हो तुम ? क्या नाम है तुम्हारा ?

गोपाल, बालक ने सहम कर कहा।

गोपाल ! फिर इतनी रात को कहाँ भटक रहे हो ? दो बजे हैं।

काँपता हुआ बालक कालीन के फर्श पर एक ओर बैठ गया। बोला—सोऊँगा मैं।

चित्ररेखा भी बैठ गई। स्नेह से हाथ फेरती हुई बोली—खाओगे कुछ ?

खाऊँगा !

खड़ी हुई परिचारिका की ओर मुड़ कर चित्ररेखा ने आदेश दिया—कुछ खाने को लाओ।

इस अद्भुत प्रसङ्ग पर झुँझलाई-सी परिचारिका जरा देर में लौट कर खाने की कुछ सामग्री स्वामिनी के निकट रख गई।

बालक की आँखें अब नींद से झुकी पड़ रही थीं। परम स्नेह से चित्ररेखा ने उसे अपनी गोद में खींच लिया और अपने हाथों से वह खिलाने लगी।

मुँह धुला कर एक गरम शाल लपेट कर उसने बालक को पलंग पर सुला दिया—परिचारिका ने आश्चर्य से पूछा—और आप...कहाँ सोएँगी ?

सो रहूँगी मै जाओ तुम !

परिचारिका हट गई। स्वामिनी के इस बदले हुए स्वभाव पर उसे कुछ अधिक आश्चर्य न था, तो भी इस बालक के प्रति उसे ईर्ष्या अवश्य हो आई।

चित्ररेखा के इस शयन-गृह में यदि कोई विशेषता थी तो वह भगवान् श्रीकृष्ण की एक बड़ी तस्वीर जिन पर ताजे फूलों की माला वह रोज अपने हाथों गूँथ कर चढ़ाती। भक्ति भावना या साधना के साथ ूजा उसने शायद ही कभी की हो, किन्तु प्रति दिन,पुष्पमाल समर्पित करके वह करबद्ध प्रणाम अवश्य करती थी। आज उस चित्र के प्रति जैसे उसकी श्रद्धा उमड़ पड़ी। दिन की मुरझाई हुई माला उतार कर आंचल से पोछती हुई बोली—मोहन मेरी मूक सेवा स्वीकार कर गोपाल के रूप में तुम्हीं तो मेरे द्वार पर आकर नहीं भटक गए स्वामी ! धन वैभव सुख सौन्दर्य पा कर भी तो मै प्यासी रह गई थी। वह मेरी अनन्त तृष्णा इस बालक की एक पुकार सुन कर जैसे तृप्त

हो गई। तो गोपाल के रूप में मेरे मातृत्व की निधि तुम्हीं तो लूटने नहीं आए हो ? बोलो भगवान्...बोलो, इस घृणित शरीर, घृणित मन की पुकार क्या तुम्हारे हृदय तक पहुँच गई।

कितनी ही देर तक चित्र के सामने वह ध्यानमग्न खड़ी रही, आज प्रथम बार उसके हृदय में श्रद्धा और भक्ति का उदय हुआ। करबद्ध शीश झुका कर वह धीरे-धीरे लौटी, पलङ्ग पर झुक कर उसने बालक के रूखे बालों पर एक बार हाथ फेरा और चुपचाप एक ओर के लिहाफ का कोना खींच कर सो रही।

प्रातः नींद खुलते ही चित्ररेखा ने देखा—बालक उसकी गोद में सिमट गया है; उसकी गरम श्वासों के स्पर्श से चित्र-रेखा का अङ्ग-अङ्ग पुलक उठा। कितनी तृप्ति की अनुभूति थी, कितना सुखद स्पर्श था।

परिचारिका निकट आई और बोली—नहाने का पानी गरम है।

आती हूँ। चित्ररेखा उठ बैठी। और साथ ही उठ बैठा बालक—माँ माँ मेरी अम्मा! कह कर चिपक गया उसके हृदय से।

दो मृणाल बाँहों ने घेर कर बालक को हृदय से लगा लिया।

दूसरी परिचारिका ने आ कर उसकी वेणी खोलने का उपक्रम किया।

चित्ररेखा मुड़ कर बोली—राधा, देखा नहीं गोपाल के रूप में भगवान् मेरे द्वार पर आ कर भटक गए। आज से तुम्हारी विलासिनी स्वामिनी चित्ररेखा केवल रेखा मात्र रह जायगी,

समझती हो न। आज से तुम्हें मेरी सेवा नहीं, मेरे गोपाल की सेवा करनी होगी।

विस्मित्, चकित, सभीत, दासियाँ जहाँ की तहाँ खड़ी थीं।

चित्ररेखा ने एक एक कर अपने सभी आभूषण उतार डाले।

स्नान कर श्वेत परिधान पहन कर आज उसने आयोजन के साथ भगवान् की पूजा की और बोली—मेरे गोपाल की तरह भटकते हुए भूखे, निरीह और अनाथ बच्चों के लिए मेरी सारी सम्पत्ति आज समर्पित होगी। लेकिन तुम! तुम मुझे छोड़ कर कहीं न जा सकोगे। मेरे इसी गोपाल में बस कर मुझे अपनी बाल-क्रीड़ाओं में तुम्हें भुलाना होगा।

चित्ररेखा की भावुक आँखों ने देखा—भगवान् की मुस्कान सजीव होती जा रही है। और तभी गोपाल पुकार उठा—माँ! आत्म-विस्मृत-सी चित्ररेखा ने उसे हृदय से लगा लिया। एक कोमल और एक भावुक हृदय में वात्सल्य की अनुपम ग्रंथि डाल कर सचमुच भगवान् मुस्करा पड़े!

राजद्रोही का प्रेम

न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठे हुए योगेश अचानक अनमने हो उठे। वकील, बैरिस्टर आदि आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगे।

खड़े होकर योगेश ने घड़ी की ओर देखा, चार बज गए थे। उन्होंने घूम कर कहा—दो सप्ताह की तारीख डाल दो। और वे अदालत के बाहर चले गए। नित्य की तरह क्लब न जाकर उन्होंने मोटर पर बैठ कर कहा—अब्दुल!

जी हुजूर—

बँगले पर चलो!

और मोटर स्टार्ट हो गई।

युवती नीलम फौव्वारे से पानी भर-भर कर फूल के गमले सींच रही थी। असमय में पति को आया देख कर वह दौड़ पड़ी और मुस्करा कर बोली—इतनी जल्दी!

हूँ कह कर योगेश अपने कमरे में चले गए और दरवाजा बन्द कर एक सोफे पर बैठ गए—अभी अभी जैसे कल की

बात हो, सुनीता ने योगेश के प्रस्ताव को ठुकरा कर कहा था—तुम भूलते हो योगेश, विवाह बराबरी में होता है !

अधिक से अधिक इस बात को हुए दो वर्ष बीते हैं, और सुनीता के इस स्पष्ट कथन और उपेक्षा से तिरस्कृत होकर उन्होंने प्राणपण से चेष्टा करके न्यायाधीश का पद प्राप्त किया था जो दुनिया की दृष्टि में एक गौरव का पद है। और तब तो कुछ ही दिन बाद सुनीता की ही इच्छा से प्रेरित हो कर उसके पिता ने कहा—योगेश, तुम सुनीता से विवाह कर लो, इस साल वह बी० ए० पास हो गई है।

तब योगेश ने पिछली बात याद करके विद्रूप की हँसी हँसते हुए कहा—नहीं चाचाजी, विवाह तो बराबरी में होता है।

योगेश ने अभिमान से कहा था और सुनीता के प्रेम की परीक्षा ली थी, लेकिन उसी बीच सुनीता अमेरिका चली गई और योगेश ने सुनीता को जलाने के लिए नीलम से विवाह कर लिया।

विवाह कर लेने के बाद भी योगेश के हृदय में सुनीता के लिए एक स्थान सुरक्षित था; नीलम उनकी बाहरी दुनिया में थी, सुनीता उनके हृदय में, रोम-रोम में व्याप्त थी। आज दो वर्ष बाद योगेश ने सुनीता को दर्शकों की गैलरी में देखा था। कई महीने से राजद्रोही युवकों का एक केस चल रहा था, आज उसका फैसला था, और सुनीता आई थी शायद उसका निर्णय सुनने।

जब योगेश ने सिर उठाया, तब सामने देखा कि नीलम मन्द मन्द मुस्कराती हुई जैसे उनके चेहरे के सारे भावों को धीरे धीरे पढ़ रही है। योगेश ने अधीरता से उसे बहुत पास खींच लिया, जैसे अपना सारा प्रेम नीलम के ऊपर उँडेल देना चाहते हों।

मुक्त होकर नीलम ने कहा—एक बात कहना चाहती हूँ।

एक नहीं, एक हजार बातें कहो, मैं सुनूँगा, सुनाओ।

एक स्त्री तुमसे मिलना चाहती है। बोलो, मंजूर है? नीलम ने आग्रह से कहा।

स्त्री मिलना चाहती है? कौन स्त्री? नाम तो बतलाओ।

नीलम ने अपने ओठों को दाँतों से दबाते हुए कहा—नहीं नहीं अब मत पूछना, बस उसके आने पर सब मालूम हो जायगा।

रजनी के कृष्णाञ्चल में तारे विश्राम कर रहे थे। फौव्वारे के समीप रङ्गीन बल्ब के प्रकाश में योगेश और नीलम चुपचाप बैठे हुए थे।

नीलम बीच-बीच में बोल उठती थी, लेकिन योगेश आज शाम से ही उद्विग्न थे। वे कम बोलते थे।

नीलम ने घड़ी देख कर कहा—दस बज गए, अभी तक वह नहीं आई। योगेश के हृदय में उत्सुकता थी। उनकी जिज्ञासा चरम सीमा पर पहुँच रही थी, लेकिन हठीली नीलम इससे आगे बताने को तैयार न थी और अभी तक आगन्तुक का पता भी न था।

योगेश ने खड़े हो कर कहा—नीलू, अब मैं सोने जा रहा हूँ। बत्तीयाँ बुझा दो। इतने में एक स्त्री धीरे धीरे आकर वहाँ खड़ी हो गई। योगेश को नमस्ते करने के बाद उस स्त्री ने कहा—श्रीमान् मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहती हूँ।

शुभे, पहले मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ, उसके बाद आप अपनी बात कहें।

युवती क्षण भर कुछ सोचती रही, फिर बोली—योगेश, मैं सुनीता हूँ। और उसने अपने शरीर पर का लिपटा हुआ वस्त्र उतार कर अलग कर दिया।

योगेश ने आश्चर्य से कहा—सुनीता! कहो क्या कहना चाहती हो?

सुनीता ने बैठ कर कहा—जिन राजद्रोहियों का मुकदमा चल रहा है, उनमें विजयकुमार को बचाना चाहती हूँ।

योगेश का हृदय कौतूहल से स्पन्दन कर उठा। उन्होंने कहा—राजद्रोह साधारण अपराध नहीं है।

जानती हूँ, पर साधारण काम तो साधारण लोगों से ही हो जाता है, असाधारण जान कर ही तो आपके पास आई हूँ।

विजय साधारण अपराधी नहीं है, राज्य की प्रजा में उसने जो क्रान्ति पैदा कर दी उसकी सजा बहुत ही कठोर है। और मुझे आश्चर्य है, तुम एक प्रतिष्ठित उच्च पदाधिकारी की पुत्री होकर ऐसे मामले में हस्तक्षेप करती हो!

सुनीता की आँखें छलछला उठीं। धीमी आवाज में उसने उत्तर दिया—योगेश ! प्रेम के सामने धन और प्रतिष्ठा सब कुछ तुच्छ है।

योगेश ने उपहास से कहा—प्रेम ! राजद्रोही का प्रेम !—जिसके जीवन का प्रत्येक पल कण्टकाकीर्ण रहता है !

योगेश ने देखा कि नीलम इतनी देर से चुपचाप खड़ी है, उन्होंने सुनीता की ओर कनखियों से देखा और नीलम को अपने पास बैठा लिया।

सुनीता खड़ी हो गई।

योगेश ने फिर प्रश्न किया—क्या विजयकुमार ने तुम्हें मेरे पास भेजा है ?

नहीं मैं स्वयं आई हूँ। सुनीता ने तीव्र स्वर में कहा।

सुनीता मुझे क्षमा करना, मैं विजय को बचा न सकूँगा; लेकिन इतना तुम विश्वास रखना कि उन्हें देश-निर्वासन नहीं होगा।

सुनीता ने नमस्कार किया। उसकी बड़ी-बड़ी रतनारी आँखें कह रही थीं—मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। उसी नीरव अन्धकार में युवती अदृश्य हो गई। बड़ी देर बाद नीलम ने पति से कहा—अन्दर चलो। बाहर घना अन्धकार छाया हुआ था, कमरे की हरी रोशनी में नीलम सो रही थी और योगेश अपने पलङ्ग पर लेटे हुए सोच रहे थे—सुनीता के ही लिए मैंने सब कुछ किया, सोचा था एक दिन सुनीता के बँगले के सामने अपना भव्य

भवन खड़ा कर दूँगा, और दिखा दूँगा कि अगर मनुष्य उद्योगशील है तो उसके लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं है।

आज भी उनके कानों में सुनीता के शब्द गूँज रहे थे—विवाह बराबरी मे होता है योगेश! लेकिन आज तो योगेश का सारा अभिमान कपूर की भाँति उड़ गया था, उनके चेहरे पर कितनी दीनता थी। क्या सुनीता विजयकुमार को प्यार करती है? शायद विजय साधारण श्रेणी के एक गृहस्थ का लड़का है, और सुनीता शहर के गण्यमान, धनाधीश की इकलौती पुत्री। उसके पिताने उसे ऊँची शिक्षा दी, उच्च और स्वतन्त्र विचारों के विकास में पूरी सहायता दी है। ऐसे मस्तिष्क का यह निर्णय! दोनों में क्या समानता है? सुनीता कोमल, सुकुमार, सुन्दर और धनाढ्य की बेटी, और विजय साधारण, श्याम, कठोर और कृश, एक गरीब का लड़का। हाँ, शायद उन दोनों के विचारों में सामञ्जस्य हो लेकिन नारी का हृदय कितना रहस्यमय है। क्या सुनीता ने मुझसे प्रेम नहीं किया था?

उन मधुर स्मृतियों को तो मैंने अब भी सुरक्षित रखा है। कभी सुनीता ने कहा था—योगेश, तुम्हारी अनुपस्थिति में मुझे कुछ खोया-खोया-सा लगता है। और एक बार मेरे अस्वस्थ होने पर तो १५ दिन तक वह मेरे पास से हटी तक न थी, सारा परिवार सो जाता, माताजी तक झपकी लेने लगतीं परन्तु वह चुप-चाप सिरहाने बैठी रहती। जब कभी मेरी आँखें खुलतीं,

उसे जागती और सतर्क पाता; लेकिन आज के और उन दिनों के रूप में कितना अन्तर है।

योगेश उठ कर बैठ गए। उनका गला सूख गया था। उन्होंने नीलम को जगा कर पानी माँगा, पानी पीकर वे कुर्सी पर जा बैठे। नीलम ऊघँती-सी खड़ी थी। उन्होंने बड़े प्यार से कहा—जाओ तुम सो रहो, मुझे एक जरूरी काम याद हो आया है। एक घण्टे बाद सोऊँगा।

नीलम पति के हृदय की बहती आँधी से एकदम अपरिचित थी, लेकिन आज पति को हैरान और चिन्तित देख कर वह स्वयं कुछ दुखी थी। क्षण भर पति के मलिन मुख पर दृष्टि गड़ा कर उसने देखा और तब जाकर सो रही।

योगेश की विचारधारा फिर प्रवाहित हो गई—विजय, तुम संसार में भाग्यशाली जीव हो। जिसने सुनीता का प्रेम जीता है उसका बाल भी बाँका न होगा। योगेश के मन ने कहा—एक बार अपने विचारों को भी तोलो। मैंने तो उसके स्नेह और सेवा के बदले में अपने हृदय में आग जला ली है, उसके हृदय और विचारों की गहराई तक न पहुँच कर मैंने धन, प्रतिष्ठा, पद, विलास और वैभव का संग्रह कर उसे नीचा दिखाना चाहा। शायद उसने मुझमें कोई बुराई पाई हो या अपने को मेरे अयोग्य समझा हो। कुछ भी स्पष्ट करने के पहले ही मैंने उसके विषय में कैसी धारणा बना ली थी, लेकिन आज भी तो मेरे हृदय में सुनीता की मूर्ति जगमगा रही है, उसके लिए तो मेरे

हृदय में अब भी वही जगह है जो युवक के हृदय में अपनी मनोनीत पत्नी के लिए रहती है।

लेकिन क्या मैं नीलम के सुनहले संसार में आग लगा दूँ, इसके हरे-भरे बाग मे जो आशाएँ फूल रही हैं उन्हें निर्दयता से मसल कर फेंक दूँ, एक स्त्री के लिए दूसरी स्त्री का सर्व-नाश करूँ?

सुबह उठ कर योगेश ने देखा उनका जी बहुत हल्का था, रात की सी परेशानी नही है। चाय पर बैठे हुए वे दैनिक पत्रिका के पन्ने उलट रहे थे। नीलम आकर उनकी कुर्सी के बहुत समीप खड़ी हो गई। योगेश ने उसकी ओर ध्यान से देखा—जैसे किसी कुशल चित्रकार की पैनी दृष्टि हो।

नीलम इकहरे बदन की १८–१९ वर्ष की युवती थी। रङ्ग हल्का पीलापन लिए हुए, कद की लम्बी, आखें बड़ी बड़ी, निचले ओठ अरुण और कुछ मोटे, दाँत मोती से उज्ज्वल, मुख पर सरलता के चिह्न—मतलब यह कि उसकी सारी बनावट उसे सुन्दरता का रूप देती थी। पोशाक साधारण होने पर भी आकर्षक लगती थी।

योगेश अतृप्त आँखों से देर तक उसे देखते रहे, फिर उसके लहराते हुए लम्बे बालों को मुट्ठियो में लेकर बोले—नीलू, बोलो आज मौन व्रत क्यो है?

नीलम ने कुछ भारी कण्ठ से उत्तर दिया—तुम बताओ सुनीता कौन है? योगेश खिलखिला कर हँस पड़े—कल एक स्त्री

देखी है न, वही सुनीता है। वह मेरे साथ पढ़ती थी, बाबूजी के मित्र की कन्या है। वह बी० ए० तक मेरे साथ ही पढ़ी थी, आजकल वह ग्रामसुधार का काम करती है। योगेश एक साँस में कह गए।

और विजय? नीलम ने फिर प्रश्न किया।

उसे मैं नहीं जानता, आजकल एक मुकदमे में कई युवक गिरफ्तार किए गए हैं, उन्हीं में विजय भी एक है। वह एम० ए० फाइनल का छात्र है, इसके सिवा उसका विशेष परिचय मैं कुछ नहीं जानता।

नीलम का चेहरा कुछ हरा हो गया। वह मुस्करा कर बोली—कल सुनीता ने कहा था कि विजय मेरे भावी पति हैं, अगले माह में विवाह होना निश्चित था, दैव-दुर्विपाक से वे मुकदमे में फँस गए हैं।

शायद हो। योगेश क्षण भर के लिए फिर उद्विग्न हो उठे। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया—नहीं, कभी नहीं, सुनीता का सौभाग्य मेरे हाथ में है। इस समय मैं उससे बदला लूँगा। एक दिन उसने मेरे प्रेम को ठुकराया था, आज मैं अपने न्याय के चक्र से उसके अमर प्रेम को खण्ड-खण्ड कर दूँगा।

× × ×

दो सप्ताह बाद—अदालत में फिर सनसनी थी। राजद्रोहियों के मुक़दमे का फैसला था। विजयकुमार की बारी अन्त में आई। योगेश ने काँपते हुए निर्णय का कागज उठा लिया—

विजय को आजन्म देशनिर्वासन। सुनीता की दृष्टि योगेश से मिल गई, उसी क्षण वह बाहर निकल आई।

इस मुकदमे के बाद—आज भी योगेश का चित्त विकृत हो उठा। वे इजलास के बाहर उठ आए। पाँच बज गए थे, बाहर का दृश्य कारुणिक था। निर्वासित कैदी अपने स्वजन-सम्बन्धियों से सदैव के लिए मिल कर विदा हो रहे थे, पुलिस लारी पहले से खड़ी थी। युवकों के मुँह पर अपूर्व तेज था। उन निर्वासित युवको के तेज के सामने योगेश को अपना अस्तित्व बहुत ही फीका मालूम हुआ। उनका जी चाहता था कि कहीं छिप जाएँ, लेकिन एक बार सुनीता के हृदय की थाह लेने की आशा वे न त्याग सके। वे आगे बढ़े। उन्होंने सामने सुनीता के पिता को देखा जिनकी गोद में सुनीता के साथ बैठ कर वे सैकड़ों बार खेल चुके थे। उन्होंने मस्तक झुका कर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने वात्सल्य से योगेश की पीठ पर हाथ रख कर कहा—बेटा तुम तो अभी यहाँ ठहरोगे न ? आते वक्त सुनीता को मेरे बँगले पर उतार देना।

योगश लज्जित होकर बोले—चाचाजी, विजय सुनीता के भावी पति हैं, यह मुझे अब मालूम हुआ। सुनीता तो मेरा मुँह भी देखना पसन्द न करेगी।

नही बेटा ! सुनीता इतनी बुद्धिहीन नहीं है।

योगेश मोटर पर बैठ गए, लेकिन जाने की बलवती इच्छा अब शान्त हो गई थी। उन्होंने देखा सुनीता ने बड़ी सुन्दर माला विजय के गले मे डाल दी।

विजय ने उल्लसित स्वर में कहा—सुनिता दुखी मत होना, अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए और अपने गरीब भाइयों के अधिकार प्राप्त कराने के लिए ही मैंने क्रान्ति की थी। इस बलिदान के लिए मुझे रत्तीभर भी दुःख नहीं है। इस जन्म में यह अन्तिम विदा है, लेकिन फिर कभी मिलेंगे।

सुनीता ने कोई उत्तर नहीं दिया—उसकी आँखें छलछलाई हुई थीं।

क्या सोचती हो ?—विजय ने व्यग्र होकर पूछा।

राजद्रोही का प्रेम ! उसकी आँखों के आँसू व्यक्त हो गए और पतले ओठों पर एक मलिन मुस्कान की रेखा खिंच कर मिट गई।

विजय ने प्रेम-भरी आँखों से उसे देखा और वह लारी पर जाकर बैठ गया, लारी धूल उड़ाती हुई निकल गई।

योगेश सुनीता के पास जाकर बोले—सुनीता, आओ तुम्हें बँगले पर उतार दूँगा।

सुनीता ने आँख ऊपर की। उसने कहा—नहीं योगेश भइया मैं पैदल ही चली जाऊँगी।

योगेश ने सुनीता के और निकट आकर कहा—विजय तो गरीबों के हक पर बलिदान हुए, लेकिन तुम ?

राजद्रोही प्रेम पर ! सुनीता का उत्तर दृढ़ और तेजोमय था।

प्रेम अन्धा होता है सुनीता। योगेश ने उसके मुख पर दृष्टि गड़ा कर कहा।

अन्धा ? उसके सहस्रों आँखें हैं। कह कर सुनीता चौड़े फुटपाथ को पार करने लगी।

मन का मोह

श्रीकान्त ने ताजा दैनिक पत्र उठा कर देखा—पहले पेज पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—जिलाधीश श्री श्रीकान्त कुमार को पत्नी वियोग! आपकी पत्नी सौभाग्यवती उमा-शशि का गत रात्रि देहांत हो गया, ईश्वर दुखित परिवार को शांति दें।

श्रीकान्त की आँखें छलछला आईं, लम्बे सात वर्ष उमा के साथ उन्होंने सुखद दाम्पत्य-जीवन व्यतीत किया था, उसकी स्मृति घर के एक-एक कण में विद्यमान है, मृत्यु के बारह घण्टे हुए लेकिन उमा के एक-एक शब्द उनके कानों में अब तक गूँज रहे हैं, यद्यपि उसके अन्तिम शब्द इतने अस्पष्ट थे कि उन्हें सुन कर भी वे समझ न सके थे। कल आठ बजे उसने पति के हाथ से पानी पीया, तीनों बच्चों को बुला कर देखा प्यार किया, फिर बूढ़ी धाय से आगे भी बच्चों को अच्छी तरह रखने की प्रार्थना की। नन्हीं बेबी उसकी छाती पर मुँह रख कर चुप-चाप लेट गई, उमा की आँखें भर आईं, जी कड़ा कर के उसने बच्चों को बाहर ले जाने के लिए आज्ञा दी। बच्चे चले गए।

श्रीकान्त का हाथ अपनी कमजोर हथेलियों में रख कर उसने दबा लिया और बहुत ही कातर स्वर में बोली—तुम्हारे साथ सात वर्ष रह कर, तुम्हें कोई सुख संतोष दे सकी या नहीं लेकिन मेरे अपने विवाहित जीवन की सफलता पूर्ण हो गई, अब चलते-चलते तुम से एक प्रार्थना है उसे पूरी करना—मेरी बीमारी की खबर बराबर अखबारों में निकल रही है, लेकिन मेरे मरने की खबर इस तरह न निकलवाना, जहाँ तक सम्भव हो ऐसी ही चेष्टा करना।

श्रीकान्त ने स्नेहपूर्वक उसके ललाट पर हाथ रख कर कहा—ऐसा क्यों कह रही हो रानी ?, क्या इस समय तकलीफ ज्यादा बढ़ गई है ?

वह मुस्काई। क्षीण-सी मुस्कान सूखे होठों पर थिरक उठी—नहीं स्वामी, अब तो वे बराबर कम हो रहे हैं। दीपक का निर्वाण देखा है न तुमने ?

श्रीकान्त ने तुरन्त डाक्टर को फोन किया—और लौट कर पलंग के पास आते ही देखा—उमा का मुँह बर्फ की तरह सफेद हो उठा है।

उमा...मेरी...उमा—श्रीकान्त चीख उठे।

लेकिन उमा के मुँह पर घबराहट का नाम न था। उसने संकेत से निकट बुला कर कहा—जीवन में एक ऐसा सत्य भी था जिसे मैंने तुमसे छिपाया था, क्या उसके लिए मुझे क्षमा कर सकोगे ? कौमार्य की किन्हीं अलस क्षणों में मैंने...एक... को प्यार किया था ! भाग्य की विडम्बना थी, भगवान् का

न्याय था—एक को सुखद वैवाहिक जीवन के साथ पति और संतान की प्राप्ति हुई। और दूसरे को...कोरी स्मृतियों के साथ निराशा और अशान्ति मिली—मुझे विश्वास है आज भी वे मेरी मृत्यु को सूचना पाकर पागल हो उठेंगे, उनके इस टूटे हृदय की यही एक सान्त्वना थी कि मैं पति, बच्चों और गृहस्थी के साथ सुखी हूँ।

मेरे स्वामी, वे तुम्हारे क्रोध के पात्र नहीं, क्षमा और दया के अधिकारी हैं, विवाह के बाद से तुम्हारी उमा ने एक दिन के लिए भी उनका सामना नहीं किया।

और अब उमा की जीभ ऐंठने लगी थी, श्रीकान्त को आश्चर्य था—उमा-सी कर्तव्य-निष्ठा पतिपरायणा नारी कभी रोमांस की राह में भटक चुकी होगी इसकी उन्हें तनिक भी कल्पना न थी, निश्चय ही यह निर्बल मस्तिष्क का प्रलाप मात्र है।

डाक्टर का इन्जेक्शन हाथ में ही रह गया—उमा अनन्त पथ की ओर चुप-चाप चल पड़ी।

और आज श्रीकान्त का मन इस समय बहुत ही उद्विग्न हो उठा — वे उमा की लायब्रेरी में गए।

शीशे की बड़ी-बड़ी आलमारियाँ पुस्तकों से भरी पड़ी थीं, उमा ने कितनी सुरुचि से उनका संग्रह किया था। पति और बच्चों से अवकाश पाते ही वह इस लायब्रेरी में आई थी, उसका अन्तिम आना हुआ। आते ही उस दिन आराम कुर्सी पर बैठ कर हाँफने लगी थी। उसके बाद उसने मेज की दराज

खोल कर एक रेशमी रुमाल में बँधी कोई चीज निकाली। एक क्षण उसे लिए कुछ सोचती रही, सहसा पति का निकट आगमन जान कर उसने रुमाल दराज में बन्द कर दिया—और बलात् होठो पर खींच कर लाई हुई मुस्कान में बोली—तुम आ गए अच्छा हुआ—मैं सोच रही थी तुम्हारे ही पास आनेको।

उसकी उस मुस्कान में कितनी वेदना थी, श्रीकान्त का जी भर आया—सप्रेम बाहों के सहारे उठा कर उन्होंने कहा—आओ ऊपर चलें तुम्हें अधिक चलने फिरने को डाक्टर ने मना किया है।

उसके बाद उमा फिर नहीं आई, उसी आराम कुर्सी पर एक कुंजी देख कर श्रीकान्त ने उठा ली—इसे उसी दिन उमा भूल गई थी। श्रीकान्त ने ताला खोल लिया। गुलाबी रुमाल का पैकेट उठा कर देखा एक रेशमी जिल्द की डायरी—जिसके कुछ पन्ने लिखे हुए थे उसे निकाल कर उन्होंने ताला बन्द कर दिया।

डायरी के पहले पृष्ठ पर उमा का एक चित्र लगा हुआ था जो शायद उसकी वर्ष गाँठ पर खींचा गया था, उसके बाद पृष्ठ दिए गए थे—

१६ मार्च १९३४

आज मेरी सोलहवीं वर्ष गाँठ है। पिताजी मेरी वर्ष गाँठ बड़े धूमधाम से मनाते हैं। बड़ी चहल पहल थी। ५॥ बजे पार्टी थी, बधाइयों और उपहारों के ढेर से मैं उलझी हुई थी

सहसा भैया ने पुकारा—उमा...उफ, आई भैया—चटपट साड़ी का पल्ला लपेट कर भागी। ड्राइङ्ग रूम में देखा—भैया के साथ और भी कोई है। मैं झिझकी भैया ने मुझे खींच कर कहा—शर्माती क्यों है? नमस्ते कर। पहचानती नही? पिछले महीने...पत्रिका में चित्र नहीं देखा था।

याद आया, मैंने देखा वे मुस्कुरा रहे थे, नमस्कार के प्रत्युत्तर में बधाई देते देते उन्होंने भैया की ओर लक्ष्य करके कहा—आनन्द भाई ने वर्ष गांठ का निमंत्रण मुझे नहीं दिया, लेकिन मेरा यह तुच्छ उपहार तो तुम्हें लेना ही होगा।

और उठ कर उन्होंने अपनी उतारी हुई अंगूठी मेरी उँगली में पहना दी। मैं सहमी, सकुची, ठगी-सी रह गई, वे फिर अपनी जगह पर बैठ गए।

भैया ने हँसते हुए कहा—अँगूठी पहन ली, कुछ खिलाना पिलाना भी सीखा है।

मैं जलपान लाने के लिए शीघ्र भीतर लौट पड़ी।

प्रथम परिचय में उनका 'तुम' शब्द कितना अपनत्वपूर्ण था-और उनका स्पर्श......

२ अप्रैल १९३५

आज वे फिर आए, मैं परीक्षा देकर लौट रही थी, फाटक के भीतर वे टहलते मिले, मैंने नमस्कार किया, उन्होंने प्रत्युत्तर देते हुए पूछा—पेपर कैसे हुए?

साधारणतः अच्छे ही हुए—मैं बोली।

मैंने पेपर उनके हाथ में दे दिया, पढ़कर वापस करते हुए बोले—पास होने पर मिठाई तो मिलेगी ही।

और उनके बदले में—मैं बोली।

एक अँगूठी और? वे हँस पड़े।

मैं झेंप गई—उनकी अँगूठी मेरे हाथ में ही थी।

वे विषय बदलते हुए बोले—आनन्द जी कपड़े बदलने गये हैं, उनसे कहिए देर हो रही है, साढ़े पाँच बज गए।

आप लोग पिक्चर देखने जा रहे हैं?

नहीं। वे मुस्कराए—आज खादी प्रदर्शनी है।

मैंने दृष्टि उठा कर देखा, उनकी देह पर मोटी खादी के वस्त्र थे और एक मामूली-सी चप्पल।

कितना उन्नत ललाट था और कितना दिव्य मुख-मण्डल, होठों पर सरल मुस्कान, दृष्टि मिलते ही मैंने आँखें नीची कर लीं, तब तक भैया आ गए।

४ अप्रैल—

आज सुना मेरे विवाह की बातचीत उन्हीं के साथ चल पड़ी है, माँ ने भाभी से कहा—भाभी ने मुझ से, इसी तरह धीरे-धीरे बात घर-भर में फैल गई। किन्तु पिताजी गम्भीर हैं, उन्हें शायद सम्बन्ध पसन्द नहीं। अचानक एक घटना आज और हो गई—पिताजी के मित्र की पुत्र-वधू का प्रथम प्रसव में देहान्त हो गया। तार पाकर शाम की ट्रेन से वे जा रहे थे—मुझे बुला कर बोले—मैं स्टेशन जा रहा हूँ, तुम आनन्द और रमा मेरे साथ ही चलो, मोटर लेकर लौट आना।

जी अच्छा। मैंने भैया, भाभी को खबर दी और तैयार होने लगी।

पिताजी की गाड़ी रवाना होने पर हम लोग लौटने ही वाले थे, सहसा वे सामने ही दीख गए, भैया ने पकड़ा—पूछा, इस तरह घबराए-से कहाँ चले ?

वे कुछ मुस्करा कर बोले—ट्रेन तो छूट गई भाई।

जरूरी काम न होगा—भैया ने हँसते हुए कहा।

काम तो बहुत जरूरी था, शुभ भी था, लेकिन आते-आते देर हो गई। वे बोले।

रमा भाभी ने हँस कर कहा—तो आइए एक शुभ काम यहीं क्यों न सम्पन्न हो ले। उन्होंने मेरा हाथ खींच कर उनके हाथ में दे दिया। मैं घबरा कर पीछे हट गई, वे भी शरमा गए, बोले—ऐसी जबर्दस्ती, मेरा रोम-रोम सिहर उठा—मैं लौट कर मोटर में बैठ गई। भैया भाभी और उनमें बातें होती रहीं, इसके बाद हम लोग घर लौट आए।

५ अप्रैल—

आज मन में एक उलझन-सी उठ रही है, रात नींद ठीक नहीं आई—मेरी पालतू बिल्ली मेरी गोद में आने का प्रयत्न निष्फल जान कर लौट गई—मेरा मोती मेरे पाँव चाट कर चला गया। मै किसी से भी अपना मन न उलझा सकी। अभी दो दीन पहले मेरी थी—पुस्तकें, खरगोश के दो प्यारे-प्यारे बच्चे, कुत्ते, बिल्ली बस। इतने में ही मैं भूली रहती। और

आज......नहीं, मैं अपने को धोखा नहीं दे सकती। किसी और ने मेरे हृदय में चुपके-चुपके प्रवेश किया है। वह कौन है?

रात में अचानक माँ ने पुकारा—मैं सो रही थी, उठ कर नीचे आई, देखा—उनकी गोद में एक शिशु का रुदन गूँज रहा है। कुछ विस्मय, कुछ आश्चर्य में पड़ कर पूछा—माँ यह क्या?

कितनी सुन्दर बच्ची है—और सहज ही उठ कर माँ ने उसे मेरे हाथों में देकर कहा—तुम्हें तो पशु-पक्षी तक के बच्चे अच्छे लगते हैं, यह भी तुम्हारे लिए एक खिलौना है।

सच माँ, कौन लाया इसे—मैंने उत्सुक हो कर पूछा। माँ ने बताया—पिताजी लौट आये हैं और यह मातृहीन बालिका यहीं पलेगी। परिवार में पिता पुत्री के अतिरिक्त कोई है नहीं।

७ जून—

रोजी कितनी अच्छी बालिका है, कुल तीन महीने की भी नहीं हो पाई। मुझे देखते ही झपट पड़ती है, वैसे माँ भाभी भी उसकी साज-सँभाल में बहुत व्यस्त रहती हैं, लेकिन रहती है वह मेरे ही पास। इस जीवित खिलौने को पा कर मन कितना तृप्त हो उठा है। भाभी कहती हैं—तुम माँ बन गई हो, बस पत्नी बनने की देर है।

आज घर मे बड़ी चहल-पहल है। भाभी से मालूम हुआ—रोजी के पिता आ रहे है, कही गए थे, लौटते वक्त कुछ देर यहाँ ठहरेंगे। बड़ी तैयारी थी। शाम को भैया के साथ वे...भी आए, मुझे देख कर आश्चर्य से बोले—आनन्द भाई, मेरी आँखें बदल गईं या उमा कुछ बदल गई, बतला सकते हो।

नहीं भाई, उमा ही बदल गई। उसके पशु-पक्षी आजकल अनाथ से हो गए हैं, उसकी पुस्तकें जल्दी ही कीड़ों की उदरपूर्ति का काम देंगी। जानते हो, उसे आज कल एक फूल मिल गया है।

फूल ? क्या वह तुम्हें बहुत पसन्द है। वे बोले।

जी, आप बताइए। आपको कौन फूल ज्यादा पसन्द है ? मैं बोली, रोजी के कोमल बालों पर हाथ फेरती हुई।

गुलाब। भाई मुझे तो गुलाब ही ज्यादा पसन्द है। उन्होंने कहा—रंग भी, रूप भी, लाल गुलाब मैंने बहुत लगा रखे हैं।

और मुझे यह सफेद गुलाब पसन्द है। मैंने रोजी को उनके सामने कर दिया।

उनके आँखों में आश्चर्य था, कुतूहल भी था।

सुबह चाय की टेबिल पर बैठे पिताजी ने मुझे बुला कर एक अपरिचित् से परिचय कराया। जिलाधीश श्रीकान्त कुमार—मेरी रोजी के पिता। मैंने सभीत दृष्टि ऊपर की, उन्होंने मुस्करा कर नमस्ते किया। बच्चो को लेकर देखा प्यार किया और मुझे ही लौटाते हुए बोले—दुनिया में शायद सबका मूल्य आँका जा सकता है, लेकिन मातृत्व का नहीं। किन शब्दों में आपकी कृपा का उल्लेख करूँ।

स्वर में अपनापन कम, लेकिन दुनियादारी अधिक थी। नमस्कार करके मैं लौट आई।

दोपहर को वे चले गए—उसी दिन सुना, विवाह निश्चित हो गया, इसी सप्ताह में १५ जून को विवाह की तिथि थी।

भाभी ने हँसते हुए बधाई दी, सचमुच तुम रोजी की माँ बन ही गई ।

ओह, आज फिर यह नई उलझन क्यों ? मन हँसना नहीं रोना चाहता है । मैंने रोजी को हृदय से लगा लिया, वह मेरी रहेगी । पिता की इच्छा में, विधि के विधान में विरोध कैसा... और मैं...मै भी तो चाहती थी, रोजी मुझ से अलग न हो... फिर यह मन का मोह कैसा ?

१५ जून—

आज विवाह है । कुल दो घण्टे और हैं—इसके बाद किसी का चिन्तन भी मेरे लिए निन्दनीय है, पति के प्रति विश्वासघात है । वे...भैया के साथ कामों में लगे हैं, ओठों पर हँसी है, लेकिन आँखों में आँसू...हाँ, आँसू है । भगवान् कैसी विडम्बना है ।

बचपन से जिन भगवती उमा की आराधना की थी, आज उन्हीं चरणों पर प्रणाम करने के लिए मैं फिर चल पड़ी, बाग के भीतर—आज सूखी पूजा थी । फूल नैवेद्य तक नहीं, पुजारी के जलाए धूप-दीप टिमटिमा रहे थे । मैं उमा के चरणों में झुक गई, माँ मुझे बल दो, साहस दो, धैर्य दो । मेरी पूजा, मेरी सेवा का मूल्य आज चुका दो । तुमने भी नारी का शरीर पाया, जन्म-जन्मान्तर उन्हीं शम्भू के चरणों में सती बन कर तुम रहीं, फिर मेरे साथ यह खेल, यह कौतुक क्यों ?

मन्दिर के उस शून्य प्रकोष्ठ में मेरी ध्वनि लौट आई—प्रतिमाएँ निश्चल रहीं ।

उमा...उमा विवाह का समय हो गया, तुम यहाँ? देखा वे सामने खड़े थे, टिमटिमाते दीपक की बत्ती उन्होंने उकसा दी—मैंने देखा रोजी को गोद में लिए वे खड़े थे। निकट आकर बोले—अधीर न हो उमा, नारी का त्याग अनन्त है और फिर तुम तो नारी ही नहीं, रोजी की माँ हो। भगवान् तुम्हें अचल सौभाग्य दें। उन्होंने अपने हाथ मेरे सिर पर रख कर स्नेहपूर्वक कहा—पाने से भी अधिक सुख 'विस्मृति' में है। लेकिन तुम्हें मैं विस्मरण न कर सकूँगा। तुम्हारी स्मृतियाँ मेरे जीवन की सब से श्रेष्ठ निधि हैं। उन्हें सुरक्षित रखकर भी मैं तुम्हारे प्रति अपराधी नहीं बनूँगा। आज मन्दिर के बीच विवाह की इस पावन-वेला में—तुम्हें छोटी बहन कह कर आशीर्वाद देता हूँ।

६ जून १९४२—

आज मेरे जीवन-दीप का निर्वाण अब निकट है। आज मैं पत्नी ही नहीं हूँ, तीन बच्चों की माँ हूँ। पति की अभिन्न बहुत ही प्रिय उमारानी हूँ। क्या सचमुच उनको मैं अभिन्न बन सकी।

श्रीकान्त के हाथ काँपने लगे। डायरी का अन्तिम पृष्ठ अधूरा था।

अचानक द्वार खोल कर एक व्यक्ति ने भीतर पाँव रखते ही पूछा—उमा...कैसी...है उमा!

श्रीकान्त ने उठ कर आगन्तुक का हाथ पकड़ कर अपने पास बैठा लिया और बोले—आप कौन हैं, यह मैं जान गया हूँ। लेकिन अब उमा नहीं है, उसकी स्मृतियों में यही कुछ शेष

बच रहा है। श्रीकान्त ने एक-एक कर तीनों बच्चों को आगन्तुक की गोद में दे दिया।

और जीवन-पथ का वह निराश आरोही, बच्चों में मिल कर बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो उठा।

श्रीकान्त सजल नेत्रों से चुपचाप बैठे हुए थे।

अपराजिता

कृष्णपक्ष के घने अन्धकार में तारे झिलमिला रहे थे, मनोरमा शीशे के सामने खड़ी अपने केश-विन्यास को मुग्ध दृष्टि से देख रही थी, अपने में भूली और खोई-सी वह बिलकुल भूल गई कि कमरे में और कोई है।

छोटी बहू, खाना कहाँ रक्खूँ? कहती हुई सरिता कुछ सकुचा-सी गई।

खाना? क्या वे ठंडा खाना खाएँगे, यह एक ही रही? मनोरमा ने भृकुटी चढ़ाकर कहा।

ग्यारह बज गए हैं। खाना तो यों ही ठंडा हो रहा है। सरिता ने दबी जबान से खिन्न हो कर कहा।

क्या मेरी जगह पर आप होती तो उन्हें ठंडा खाना खिलाती?

सरिता का मन जाने कैसा हो उठा। वह थाली लेकर चौके में लौट आई, खाना आग के पास रख दिया, और आँचल बिछा कर वहीं लेट गई। देर तक मनोरमा के कमरे में ग्रामोफोन बजता रहा—मन चाकर राखो जी। सरीता बड़े ध्यान से सुन रही थी, अचानक वह भी गुनगुना उठी-मन चाकर राखो जी!

थोड़ी देर में सर्वत्र निस्तब्धता व्याप्त हो गई, केवल बिजली की बत्तियाँ अपने आलोक से मुस्कराती रहीं।

एक बजे के करीब नरेन्द्रमोहन ने मनोरमा के कमरे में प्रवेश किया। स्प्रिङ्ग के मोटे मखमली गद्दे पर लेटी हुई मनोरमा निद्रा में मग्न थी। बिजली का बटन दबा कर नरेन्द्र ने पत्नी की ओर मुग्ध दृष्टि से देखा, गोरे, सुन्दर मुख पर स्वेद की बूंदें छलछला आई थीं, नरेन्द्र ने झुककर अपने सुवासित रुमाल से उन्हें सुखा दिया। मस्ती की अँगड़ाई लेती हुई मनोरमा उठ बैठी। बोली—ओह, तुम इतनी रात तक कहाँ थे? जागते-जागते आँखें पथरा गईं।

नरेन्द्र ने उसके लम्बे केशों पर हाथ फेरते हुए कहा—तुम सो जाओ मैं कपड़े बदलूँ। आज थिएटर चला गया था।

क्या वक्त है? मनोरमा ने अपना सर तकिए पर रखते हुए पूछा।

एक बज गया है। बड़ी मुसीबत थी। रास्ते में मोटर का ब्रेक खराब हो गया था, नरेन्द्र ने कपड़े उतारते हुए कहा।

थोड़ी देर में मनोरमा निद्रा-मग्न हो गई।

नरेन्द्रमोहन कपड़े बदल कर लेट गए, फिर उन्हें ध्यान आया मनोरमा खुद तो आराम से सो गई और मुझे खाने तक को नहीं पूछा। हाँ, रसोई घर में अभी तक उजाला है शायद मेरा खाना रखे हुए सरिता बैठी होगी। वह उठा, चुपचाप रसोईघर में चला गया। सामने दृश्य देख कर वह लज्जा और ग्लानि से

गड़ गया। सरिता गीली जमीन पर अपना आँचल फैला कर सो रही थी।

विगत जीवन के कुछ दृश्य उसकी आँखों में स्थिर हो उठे; उसका मन विचलित हो गया। एक वह दिन था जब सरिता उसकी संसार में सबसे प्रिय वस्तु थी। १२-१३ वर्ष की बालिका। जब वधू बन कर घर में आई थी, कितनी शोख और चंचल थी। उसके नन्हें हृदय में प्रेम का सोता बह चला था, लेकिन कालचक्र ने उसके स्वभाव में कितना परिवर्तन कर दिया, आज वर्षों से वह कितनी शान्त और सहनशील हो गई है। पति के जिन पैरों ने उसके प्रेम-विश्वास और श्रद्धा को ठुकरा दिया उन्हीं निष्ठुर पैरों को छूने के लिए सरिता अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर रही है।

नरेन्द्र भी जमीन पर बैठ गया—और सरिता का सर उठा कर उसने धीरे-धीरे अपनी गोद में रख लिया।

कई मिनट बीत गए, दिन भर के कठिन परिश्रम से थकी हुई सरिता की नींद नहीं खुली। नरेन्द्र सोच रहा था—आज ५ वर्ष बाद मैं सरिता के पास आया हूँ। एक साथ रहते हुए भी कभी दोनों को बोलने का अवसर नहीं आया। नहीं मैं स्वयं ही ऐसे अवसर से बचता रहा हूँ। इँगलैंड जाते समय मैंने सरिता को कैसे कैसे शब्दों में सान्त्वना दी थी। यात्रा के पूर्व सरिता ने हँसी-हँसी में कहा था—चमक-दमक सभी को आकर्षित करती है। रंगीन तितलियों में मुझे भूल न जाना। और उसके बाद किस प्रकार काँप कर वह मेरे कर-पाश में

बँध गई थी ! आह उस समय की प्रतिज्ञा—! तुम्हें भूलना अपने आपको भूलाना होगा सरिता ! प्रेम इतना क्षणिक नहीं होता। और इसके बाद कैसी मदिर मुस्कान से इसने मेरी ओर देखा था, उन ऑखों मे कितना विश्वास था, कितनी श्रद्धा और कितनी दृढ़ता थी !

नरेन्द्र के मन में पूर्व की सुखद स्मृतियॉ जाग्रत हो आई। अपने कृत्य का स्मरण कर उसे बड़ी ग्लानि हुई। उसका बदन कम्पित हो उठा, दूसरे क्षण सरिता उठ कर बैठ गई। उसकी ऑखों में आश्चर्य था, कौतूहल था और थी एक भोली-सी जिज्ञासा। एक दूसरे को देखते हुए दोनों चुप बैठे थे। इसी क्षण मनोरमा के कटु शब्द गूॅज उठे—यहाँ कौन-सी प्रणय-लीला हो रही है ?

नरेन्द्र ने खड़े होकर कहा—मैं खाना खाने आया था।

कुछ पता भी है २ बज गए है। और यह नया शौक़ कब से पैदा हुआ ?

नरेन्द्र ने सोचा—सचमुच मैं अपनी सफाई नहीं दे सकता। कितने दिनो बाद आज रसोई घर में आया हूॅ।

धीरे धीरे निकल कर वह अपने कमरे में चला गया, क्रुद्धा सर्पिणी को भॉति सरिता को ओर देखते हुए मनोरमा ने कहा—आप में ऐक्टिग की अच्छी कला है। सरिता इस रहस्य को अवाक् देखती ही रह गई। यह स्वप्न था या सत्य।

(२)

फ़ोन का रिसीवर रखते हुए मनोरमा ने कहा—आज मेरा रेडियो प्रोग्राम है।

नरेन्द्र सुन कर भी अपने कामों में लगा रहा।

मनोरमा ने कुछ नम्र होकर कहा—मुझे बाहर जाना है।

जानता हूँ। नरेन्द्र ने सर झुकाए हुए उत्तर दिया।

तुम्हें मेरे साथ चलना होगा—मनोरमा ने आदेश और निश्चयात्मक स्वर से कहा।

मुझे ? नहीं मैं नहीं जा सकूँगा। मेरे पास काम अधिक है। नरेन्द्र ने कुछ रूखे स्वर में उत्तर दिया।

तो अकेली जाऊँ ? लोगों की नजरों से मुझे गिराना चाहते हो ?

तुम जो समझो।

उस दिन की घटना से मनोरमा बहुत सतर्क हो गई थी। सरिता और नरेन्द्र का साक्षात्कार बचाने की वह पूरी चेष्टा करती रही।

लेकिन अब उसका बाहर जाना जरूरी था, और शायद दो-एक दिन ठहरना भी। तो क्या वह सरिता और नरेन्द्र को परस्पर मिलने का अवसर दे, इसी उधेड़ बुन में पड़ कर उसने नरेन्द्र से चलने का प्रस्ताव किया था लेकिन नरेन्द्र ने साफ इनकार कर दिया।

यह पहला मौक़ा था कि नरेन्द्र ने आज विवाह के बाद उसकी बात काटी थी, वह परास्त हो गई। तभी उसके हृदय

के किसी कोमल स्थान से ये शब्द प्रतिध्वनित हो उठे—वे सरिता के भी पति हैं और उसका ही अग्र स्थान है।

दोपहर की ट्रेन से मनोरमा अपने रेडियो प्रोग्राम के लिए चली गई।

(३)

सन्ध्या करीब थी, नरेन्द्र की छोटी बहिन शशिमुखी चौके में बैठी हुई सरिता से बार-बार प्रश्न कर रही थी। वृद्धा सास चर्खे पर सूत कात रही थी। शशि ने सरिता की गोद में सर रख कर कहा—भाभी, भैया तुमसे बोलते नहीं ?

मनोरमा की अनुपस्थिति में स्वयं मिल गया। लेकिन उससे कैसे बातें करूँगा ?

धीरे से पैर रखते हुए सरिता ने मेज़ पर खाना चुन दिया और पंखा स्टार्ट करके बाहर चली गई। जब तक नरेन्द्र सरिता को रोके रोके तब तक वह कमरे के बाहर थी। उसमें इतना साहस न था कि वह उसे पुकार तक सके।

दस मिनट बाद—सरिता फिर कमरे में आई। उसने देखा खाना उसी तरह चुना हुआ है। नरेन्द्र चुपचाप कुर्सी पर लेटा हुआ था। उसने जिज्ञासा से पति की ओर देखा।

नरेन्द्र का मौन भंग हो गया। उसने सरिता का हाथ पकड़ कर अपने पास खींच लिया और बोला—तुम मुझसे प्रेम नहीं कर सकती, और माफ़ भी नहीं कर सकोगी, लेकिन मुझसे घृणा मत करो सरिता, मेरा अपराध...। उसके गले में ख़राश आ गई और आगे बोलने का क्रम बन्द हो गया।

सरिता की आँखें चमक उठीं—हृदय में एक अतृप्त लालसा कौंध गई, जी में आया पूछ लूँ—किसने त्यागा ? किसने सम्बन्धविच्छेद किया, किसने विश्वासघात की ओर पैर उठाया? लेकिन वह कुछ भी पूछ न सकी। नरेन्द्र के स्पर्श से वह जल्दी से जल्दी दूर हो जाना चाहती थी।

अवरुद्ध गण्ठ से उसने कहा—मेरा प्रेम और विश्वास अब त्याग में बदल गया है। आप मेरे नहीं अब मनोरमा के हैं। उसे सुखी रखें, उसके विश्वासपात्र बनें यही मेरी प्रार्थना है।

नरेंद्र ने उसका हाथ छोड़ दिया। क्षण भर के लिए सरिता का मस्तक उसके हृदय से छू गया, और वह लम्बे लम्बे क़दम रखती हुई कमरे के बाहर हो गई।

नरेन्द्र का मन कुछ हलका हो गया। मनोरमा जैसी आमोदप्रिय युवती के संसर्ग से वह क्योंकर ऊब उठा, यह सोचता हुआ नरेन्द्र भोजन करने बैठ गया। आज के खाने में स्वाद था, एक रस था।

चैत्र का महीना—रात्रि चाँदनी में स्नान कर रही थी, मनोरमा की मँजी हुई उँगलियाँ सितार पर नृत्य कर रही थीं। आरामकुर्सी पर लेटा नरेन्द्र झपकियाँ ले रहा था। अचानक किसी के कराहने का शब्द उसे सुनाई पड़ा।

उसने मनोरमा से पूछा—रमा घर में कौन बीमार है?

मैं नहीं जानती, शायद बड़ी बहूजी हों—उसकी भौंहें कमान-सी खिंच गईं।

नरेन्द्र कुर्सी से उठना चाहता था। उसकी बग़ल में मनोरमा थी, सामने सरिता का आदेश था। अपने मन को एकाग्र कर वह कुर्सी पर और दृढ़ होकर बैठ गया।

मनोरमा ने सितार रख दिया, और खड़ी होकर बोली—कैसी सुहावनी रात है, बैठो, तुम्हें बाँसुरी सुनाती हूँ।

वह धीरे धीरे नीचे जाने लगी। सीढ़ियाँ उतरती हुई वह सोच रही थी—पुरुष का हृदय? क्या मेरे साथ ये ऐसा ही बर्ताव नहीं कर सकते? यही सुख! यही प्रेम! यही अधिकार क्या एक दिन

सरिता को नहीं मिला था ? यह प्यार ! पुरुष का प्यार कितना क्षण-भंगुर है । सरिता जैसी त्यागमयी स्त्री के लिए जिसके हृदय में दया नहीं, स्थान नहीं, उसके हृदय में मैं ? उसके मन में गहरी टीसें उठने लगीं ।

नरेन्द्र चुपचाप उठ कर सरिता के कमरे के निकट आया—दीदी...दीदी...कोमल कंठ से निकले हुए मीठे शब्द उसके कानों में गूँज उठे ।

चिक उठा कर उसने अन्दर देखा—सरिता के पलंग के पास मनोरमा यूडीक्लोन की शीशी हाथ में लिए खड़ी थी ।

सरिता कई दिन के ज्वर से बदहवास-सी हो रही थी । आँखें गर्मी से जल रही थीं, पलकें बन्द थीं । उसने मनोरमा का हाथ अपने मस्तक से हटाते हुए कहा—नहीं, नहीं, तुम जाओ । रमा अकेली होगी । मैं अच्छी हूँ, घबराने की कोई बात नहीं । और उसने आँखें खोल दीं ।

मनोरमा उसके पास बैठती हुई बोली—दीदी अब तुम अकेली नहीं हो । घबराओ मत अब मैं यहीं हूँ ।

सरिता आश्चर्य से पागल हो उठी—छोटी बहू रमा ? मैं जानती थी, तुम लक्ष्मी हो... । उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े ।

नरेन्द्रमोहन मौन खड़ा रहा । अहंकार और ख्याति की पुजारिन क्या सचमुच यह वही मनोरमा है ?

उसने क्षीण स्वर से पुकारा—मनोरमा ?

मनोरमा मुस्कराकर बोली—आओ देखो, दीदी का बुखार कम हो रहा है, तुम यहीं बैठो मैं बासुरी लेती आऊँ।

मंत्र-मुग्ध-सा नरेन्द्र मनोरमा के आदेश से सरिता के पलँग पर बैठ गया। कैसी हो सरिता ? नरेन्द्र ने कातर स्वर में पूछा।

घबराओ मत जीवन मे एक आधार चाहिए वह आज मिल गया। उसके शुष्क अधरो पर मुस्कराहट खिच उठी।

क्या मिल गया ? नरेन्द्र ने चकित होकर पूछा।

मनोरमा रानी ! सरिता के निष्प्रभ हो रहे मुख पर उल्लास की लहर-सी दौड़ पड़ी।

आती हूँ दीदी, कहती हुई मनोरमा सरिता के सिरहाने स्थिर होकर बैठ गई।

दो-तीन मिनट में बाँसुरी साध कर अपनी स्वर लहरी फैलाने लगी। पक्षी चहचहा उठे, पौधे झूमने लगे और पवन मस्त हो गया।

मन्द समीर ने इस मिलन का मृदु सन्देश चारों ओर पहुँचा दिया।

खुली खिड़की से चन्द्रमा झाँक रहा था, उसने तीनों के मुख पर अपनी किरणें बिखेर दीं—शायद तीनों के भाव जानने के लिए।

मनोरमा के मुख पर आह्लाद था, नरेन्द्र के मुख पर ग्लानि और खुशी।

सरिता के कुम्हलाये हुए ओठों पर फीकी-सी हँसी थी !

एक रात

उर्मिला उर्मिला ! आवाज कई कमरों को पार करती हुई उर्मिला के कानों में गूँज-सी उठी।

अभी दस मिनट पहले तूलिका रख कर रङ्ग से भरे हाथ लिए वह बिस्तर पर जा पड़ी थी। जाड़े की ठिठुरती रात की हवा तीर-सी चुभ रही थी। गरम रेशमी लेहाफ में सिमटी पड़ी उर्मिला एक बेबसी की निश्वास लेती हुई उठी, पाँवों में चप्पल डाला, शाल लपेटा, और दरवाजा खोलने के लिए चल पड़ी। खीझ और झुँझलाहट का रङ्ग उसके चेहरे पर चढ़ रहा था।

उमाकान्त ने फिर पुकारा—उर्मिला...

आवाज इस बार स्पष्ट सुन कर भी उर्मिला ने प्रत्युत्तर न दिया। चुपचाप दरवाजा खोल कर पति के आगे ही चल पड़ी।

कमरे में आकर कुछ भारी कण्ठ से बोली—खाना लाऊँ ?

लाओ !

उमाकांन्त ने देखा अँगीठी ठण्ढी पड़ चुकी है, खाने से भी अधिक आवश्यक थी इस समय थोड़ी-सी

आग। हाथ-पाँव उसके जकड़े जा रहे थे, खाना रख कर उर्मिला एक ओर खड़ी हो गई। उमाकान्त ने थाली खींच ली।

उर्मिला का रोष कुछ कम हुआ, बोली—आखिर इतनी रात-रात तक गायब रहना कब तक जारी रहेगा?

उमाकान्त ने दृष्टि ऊपर की और बहुत ही शान्त स्वर में कहा—कौन जाने? आखिर मैं पूछती हूँ—दूध का कटोरा पति के पास रखती रखती उर्मिला बोली—दुनिया भर का ठेका क्या तुम्हींने ले रक्खा है?

यह तो मैंने कभी कहा नहीं उर्मिला—

फिर घर गृहस्थी से इतना विराग क्यों?

विरागी हूँ, यह मैं कब कहता हूँ उर्मिला?

तुम कुछ न कहो तो भी क्या मैं इतनी मूर्ख हूँ? देखती हूँ दिन-दिन भर तुम गायब रहते हो, रात-रात तुम्हारा पता नहीं रहता, कभी आते हो कभी नहीं।

लेकिन मैं कहाँ रहता हूँ यह तो तुम जानती हो न?

जानती हूँ। उर्मिला का स्वर अचानक कठोर हो उठा—

तब ऐसा क्यों सोचती हो उर्मिला? तुम्हारे हृदय की विशालता, उदारता क्या यहीं तक सीमित है। अपने चित्रो में तुम करुणा की धारा बहा देती हो, इन मूक चित्रों में जाने कितने भाव सजीव हो उठते हैं, लेकिन शायद ये तुम्हारे हृदय के क्षणिक भाव रहते हैं—एक बार चल कर देखो, कला-पूर्ण मन सौन्दर्य का मूल्य भले ही आँक ले, लेकिन दुनिया की वास्तविकता परखने के लिए हृदय चाहिए, जिसमें ममता

का स्रोत बहता हो। जानती हो समय क्या चाहता है? युग-युग की माँग अलग होती है।

तो तुम मुझसे चाहते क्या हो?—मर्माहत स्वर में उर्मिला ने कहा।

मैं वही चाहता हूँ, जो एक पति अपनी पत्नी से चाहता है। जानती हो वह क्या है?

जानती हूँ, लेकिन तुम यह क्यों भूल जाते हो कि पत्नी भी पति से कुछ चाहती है?

तुम्हारी माँग उचित है, इसे मैं मानता हूँ उर्मिला! लेकिन समय के उपयुक्त नहीं। आज से पहले या आज से बहुत पीछे यदि तुम कुछ माँगती तो शायद कुछ दे सकता, लेकिन आज तो मैं तुम्हारी ही दृष्टि में कितना असमर्थ हूँ यह तुम जानती ही हो। मेरे विचारों से असहमत पिता ने जमीन जायदाद बाग मकान सब तुम्हारे नाम कर दिया, तुम घर बाहर दोनों की स्वामिनी हुई। तब एक दिन मेरी पुकार हुई! वह पत्नी की पुकार पति के लिए न थी, नारी की एक कोमल भावना थी जिसे दूसरे शब्दों में हम दुर्बलता कह सकते हैं। एक सम्बल की छाया मात्र तुम्हें आवश्यक थी। मैं आया, प्रेम में बँध कर नहीं, कर्तव्य की प्रेरणा से। एक साथ एक घर में रह कर भी हम दो प्राणी, दो विभिन्न धाराओं मे बहते गए, दुनिया समझती है तुम धनी घर की बहू हो। जो सुख, जो वैभव, तुम्हें प्राप्त है वह कम लोगों को है, और यह ठीक भी है। तुम्हारे हृदय के किसी कोने में मेरे लिए कोई जगह शायद हो या

न भी हो, लेकिन ऊपर के भाव से तुमने सदैव उपेक्षा ही दिखलाई......

उर्मिला निःशब्द बैठी। उमाकान्त की थाली अब साफ हो उठी थी। हाथ धो कर तौलिए से पोंछते हुए वह बोला--जा रहा हूँ दरवाजा बन्द कर लो, शायद तीन-चार दिन न आ सकूँ। हाँ, बङ्गाल पीड़ितो के लिए कुछ चन्दा अगर तुम भी देना चाहो तो दे दो......!

मैंने जो कुछ दे दिया है उसके अतिरिक्त अब एक कौड़ी भी नहीं दे सकती। उर्मिला पान की गिलौरियाँ मोड़ती हुई बोली।

उमाकान्त के गम्भीर ओठों पर एक मुस्कान दौड़ कर विलीन हो गई। वह बोला—वह जो कुछ तो शायद मैं हूँ लेकिन तुम्हारे जैसे के लिए यह क्षुद्र दान योग्य नहीं, और पाँव मे चप्पल डाल कर कमरे के बाहर हो गया।

बरामदे के बीच उर्मिला ने टोका—कोट क्या हुआ?

वह एक बूढ़े भिखारी को दे आया और स्वेटर एक टण्ड से ठिठुरते हुए लड़के को। उत्तर की कोई आवश्यकता न थी। उमाकान्त सड़क के फुट पाथ पर चुपचाप चला जा रहा था, द्वार के बीच खड़ी उर्मिला के आँसू मुक्ताओ की तरह कपोलों पर चमक उठे थे—

लौट कर शयनगृह के द्वार पर वह ठिठक रही। सजे हुए शयन-कक्ष की सुन्दरता इस समय उसे लुभा न सकी। लौट कर वह दूसरे कमरे में गई। वह उमाकान्त का कमरा

था, एक चौकी, एक साफ दरी, कुछ पुस्तकें, आलमारी के एक खाने में गिने चुने कपड़े, चटाई पर एक ओर चर्खा, कुछ कते सूत, कुछ प्यूनी, बस इससे अधिक नहीं।

एक क्षण के लिए उसका हृदय उद्भ्रान्त हो उठा, इतना त्यागी, इतना पर-सेवारत, इतना महान उसका पति करोड़ों हृदय का आशीर्वाद लेकर अपने को क्षुद्र कह गया है, यह विनय है या व्यङ्ग ? वह चौकी पर बैठ गई। उमाकान्त की डायरी उठा कर पढ़ने लगी—

डायरी के पृष्ठ—

आज पहली जनवरी है, नये वर्ष का नया दिन, उर्मिला को कुछ देना चाहता था, पिछले महीने से ही सोच रहा हूँ, कुछ बारीक सूत इकट्ठे करके एक साड़ी बुनने को दे दी थी। आज उसको लेकर जा रहा था, रास्ते में काँपते दो बच्चे एक वृद्ध स्त्री के साथ मिले। भूखे बच्चे मेरे पैरों से लिपट गए। बुढ़िया रो कर बोली—भगवान तुम्हारी बड़ी उम्र करेगें बेटा, मेरे लड़के बहू की ये दो निशानियाँ आज भूख के मारे संसार से विदा हो रही हैं, इन्हें बचा लो, भगवान् तुम्हें देंगें, बहुत देंगे बेटा...

एक दर्जन सोप के लिए उर्मिला के रुपये मेरी जेब में पड़े हुए थे, उसमें से तीन रुपये निकाल कर मैंने दे दिए...उर्मिला नाराज होगी अवश्य लेकिन क्या हुआ तीन भूखी आत्माएँ तो सन्तुष्ट हो जाएँगी !

साड़ी लेकर लौटते लौटते रात हो गई। शहर की गुलजार सड़कों को छोड़ कर मैं गरीबों की बस्ती से गुजर रहा हूँ, क्यों पाँव इधर ही की ओर उठ गए, यह नहीं मालूम। देने लायक अब मेरे पास इस वक्त कुछ नहीं है, यह साड़ी है जरूर लेकिन इसे उर्मिला को देना है। विवाह के बाद से आज तक उसे कुछ नहीं दिया। प्यार से हृदय का आदान-प्रदान भी नहीं हुआ। वह पति-प्रेम से अनभिज्ञ रही, उपेक्षित रही, और मैं... मैं भी उससे अलग दूर-दूर रहा—जहाँ विचारों का साम्य नहीं, त्याग की भावना नहीं वहाँ क्या प्रेम की नींव डाली जा सकती है ? लेकिन वर्षों से जिस मन पर अधिकार करता आया, उसी मन की प्रेरणा से वह साड़ी आज देने के लिए जा रहा हूँ फिर इस रास्ते से क्यों निकला ?

सामने एक स्त्री की छाया स्पष्ट हुई, अँधेरे में लगा छाया मेरी ओर बढ़ रही है—मैं ठिठक गया। स्त्री बोली—तुम किसी को खोज रहे हो ? नहीं, मैं बोला, और आगे बढ़ गया। उसने मेरा पीछा किया, कुछ और निकट आकर बोली—देखो मेरी सी सुन्दर लड़की यहाँ तुम्हें नहीं मिलेगी। मेरी उम्र ज्यादा नहीं १५ साल की है। मेरे सब कपड़े फट चुके हैं, मैं भीख तक माँगने नहीं जा सकती। मुझे अपने घर ले चलो तुम्हारी हर तरह की सेवा करने को मैं तैय्यार रहूँगी। और वह एकदम मेरे सामने आ खड़ी हुई !

काश मैं अन्धा होता—मेरा मन कह उठा। १५ साल की बालिका का यह क्रय-विक्रय...भगवान् द्रौपदी को अथाह अम्बर

देकर तुमने क्या किया जब आज वही नारी एक टुकड़े वस्त्र के लिए अपने को बेच रही है ?

हाथ मेरे अपने आप बढ़े। साड़ी खोल कर मैंने उसके ऊपर डाल दी। पेड़ों से चन्द्रमा झाँक उठा। वह कृतज्ञ-सी मेरे सामने खड़ी थी—साड़ी का लाल किनारा उड़ रहा था। बोली—चलूँ ?

नहीं। मैंने जल्दी जल्दी पाँव बढ़ा कर अपना रास्ता पकड़ा।

उर्मिला का उपहार रह गया इस बार भी, लेकिन नहीं, उसे इसकी जरूरत ही क्या थी ? उसकी साड़ी के टँके फूल एक एक सितारे की तरह चमचमा रहे थे।

कोने में रक्खी अलार्म की घड़ी ने टन से एक बजा दिया। डायरी छोड़ कर वह उठी। आँगन में चाँदनी लोट रही थी। ऊपर चन्द्रमा मुस्करा रहा था, आज माघ पूर्णिमा थी। विशाल भवन के प्राङ्गण में वह अकेली नारी, सौभाग्य रेखा का मुकुट पहने रो उठी—

आँसू रुके। हृदय ने बल पाया और बलने साहस। रात भागी जा रही थी। आखों में नींद का नाम न था। उर्मिला अब कमरे के बीचो-बीच थी। चारो ओर उसके बनाए हुए चित्र परदे से ढँके रक्खे थे। इनमें कई कितनी ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। मनुष्य जीवन की अनेक कोमल अनुभूतियाँ इन चित्रों में सजीव हो उठी थीं।

उसके कानों में पति के शब्द गूँज रहे थे। कलापूर्ण हृदय सौन्दर्य का मूल्य भले ही आँक ले, लेकिन दुनिया को वास्तवि-

कता परखने के लिए चाहिए हृदय जिसमें ममता का स्रोत बहता हो।

नारी! ममता से शून्य!! कभी सम्भव नहीं। ब्रश और प्यालियाँ लेकर वह कुर्सी पर बैठ गई। अभ्यस्त हाथ एक नए दृश्य का निर्माण करने लगे।

पाँच बजे का झुटपुटा अँधेरा धीरे-धीरे साफ हो रहा था। सड़क के फुटपाथ पर किसी शिशु का रुदन चीत्कार कर उठा। चित्र पूरा होने पर आ गया था। रङ्ग की कूची एक बार और हाथ मे दृढ़ता से चिपक-सी गई। इच्छा अनिच्छा का द्वन्द्व एक क्षण चला। मन का अतृप्त मातृत्व मचल उठा। खिड़की पर आकर झुक गई।

फाटक के भीतर बागीचे के बीच खड़ी भिखारिन की दृष्टि खिड़की पर जा लगी। उसकी दुबली बाहें पतले चमड़े से मढ़ी हुई ऊपर उठीं—माँ, ले लो न! तुम्हारे इतने बड़े घर में कितने नौकर चाकर पलते हैं, इस बच्चे को ले लो। तुम्हारे जूठे टुकड़े खा कर यह जी जाएगा। उर्मिला का सर्वांग सिहर उठा, पशु-पक्षी तक मे उसने सन्तान-प्रेम देखा था। सन्तान-त्याग नहीं। नारी का—माँ का यह कौन-सा रूप है जो अपने ही हाथों अपने कलेजे के टुकड़े को पराए हाथ में देती फिर रही है? दूसरे क्षण वह फिर आकृष्ट हुई। माली उसे डाँट रहा था। युवती की बुभुक्षित आँखें इस अपमान को पीकर गृह-स्वामिनी पर लगी हुई थीं।

नङ्गे पाव वह नीचे उतर आई—और दोनों हाथों में शिशु को लेकर बोली—आओ !

नहीं माँ ! कुछ दे दो यहीं से लौट जाऊँ। मेरे दो बच्चे, मेरा पति आज ७ दिन से भूखे मर रहे हैं, उन्हें अन्न चाहिए, एक मुट्ठी अन्न !

और इस शिशु का ?—उर्मिला के स्वर में विस्मय था।

इसे अन्न नहीं चाहिए, इसे चाहिए दूध। और इस ठठरी में, इन सूखे स्तनों में दूध तो क्या विष तक की आशा नहीं। वह उर्मिला के पावों पर झुक गई।

उठो बहन ! संसार अभी दया ममता से इतना शून्य नहीं हो गया है। धरती अभी नहीं सूख पाई है, और मुड़ कर नौकरों की ओर आदेश के स्वर में बोली—खोल दो अन्न का प्रकोष्ठ और बाग के सब फाटक दरवाजे खुलवा दो, भूखों के लिए, मँगनों के लिए जो द्वार हमेशा से बन्द रहा है वह अब हमेशा खुला रहेगा।

क्या सोचते हो, गृहस्वामी की आज्ञा...... ?

लेकिन नहीं यथेष्ठ थी स्वामिनी को आज्ञा। दरवाजे खुलने लगे, भीड़ अँटती गई।

सूर्य की किरणें फाटक के कलशों पर चमचमा उठीं। ट्रेन छूट गई थी। उमाकांत थका निराशा-सा घर के द्वार पर आकर चकित हो गया। एक क्षण तक विह्वल दृष्टि से देखा तब चुपचाप भीतर चला। उर्मिला का शयन-गृह जैसा वह रात देख गया था वैसा अब तक था। ड्रेसिङ्ग रूम शायद सुबह से खुला ही

नहीं। बगल के कमरे में दिन हो जाने पर भी बत्ती अब तक जल रही थी। उमाकान्त पडदा उठा कर अन्दर गया। टेबुल पर का नया चित्र सामने पड़ा। जीर्ण द्वार के भीतर बैठो नारी चॉद-सा मृतक शिशु फटे पल्ले से ढाँकती हुई, ऑखों के ऑसू तक जिसके सूख चले थे, रीते पात्र का ढकना, एक बूँद दूध की आशा में बालक के मृतक शरीर में पुनः जीवन की रेखा खोज लाना चाहता था—और ठीक उसके सामने एक चित्र था जो अभी पूर्ण नहीं हो पाया था, आकृति स्पष्ट होते हुए भो मुख की भाव-भंगियॉ अभी तक गोप्य थीं।

उर्मिला के हृदय का यह नवीन भाव था। करुणा, ममता, वात्सल्य, अभाव सभी स्पष्ट हो उठे थे।

चित्र लिए लिए वह उर्मिला को खोजने लगा।

उर्मिला मिली बहुत ही व्यस्त-सी। पति को सामने पाकर अभिमान से मुँह फेर कर वह एक क्षण के लिए विवर्ण हो गई।

उर्मिला! उमाकांत ने स्नेह से दोनों हाथ उसके लम्बे चिकने बालों पर फेर कर कहा—नाराज हो? लेकिन आज तो मुझसे दूर भाग कर भी तुम दूर न हो पाओगी। जानती हो क्यों?

आज हम तुम दोनों एक ही मार्ग के पथिक हैं। उर्मिला का उत्तर कंठ में डूब रहा था। ओठों पर मुस्कान थी, आखों में ऑसू की बूदें थीं।

पति के कंधे पर सिर रक्खे वह मूक भाव से सोच रही थी—एक रात, केवल एक रात...जीवन का...

बाहर शोरगुल बढ़ रहा था। उमाकान्त ने उसे स्नेहपूर्वक खींच कर कहा—आओ देखें चल कर। यह एक रात मेरी उर्मिला के जीवन का एक नया पृष्ठ है।

उर्मिला मौन मूक सोच रही थी—जीवन का यह एक नया पृष्ठ न हो भगवान्! तुम मेरे जीवन का प्रत्येक पृष्ठ इसी रङ्ग में रङ्ग दो। दया ममता से शून्य नारी, नारी-जीवन की कितनी बड़ी कालिमा है!

सन्तोष से भर उठी। बच्चों से अधिक वह उनकी देख-रेख करती। छाया की तरह जैसे वह प्रत्येक पल का मूल्य चुका लेना चाहती है। ज्वर के प्रलाप में पति के मस्तिष्क से निकली हुई बातों ने जैसे उसके मार्ग को सुगम कर दिया था। ग्यारहवें दिन आज पहली बार डाक्टर ने बार्ली देने को कहा था। दिन डूब रहा था। बच्चों को भोजन की प्रतीक्षा में बहला कर मीना बैठी बार्ली बना रही थी। नीचे से करुण चीत्कार आया—रोटी—एक रोटी, दूध एक घूँट। किसी स्त्री की मरती हुई आवाज थी।

एक दाना...मनोकान्त उठ बैठे। मीना सिहर उठी—लेटो, तुम लेटो मैं देखती हूँ। जल्दी जल्दी आकर रेलिङ्ग पर झुकी—नीचे दुर्बल-कृश नारियों, भूखे निरीह बच्चों और बूढ़ों से बँगला घिर गया था। माँ एक रोटी, एक घूँट दूध...मृतप्राय बालक को उठा कर अनेक स्त्रियों का स्वर गूँज उठा—रोटी...रोटी की कई आवाजों में वह आत्मविस्मृत-सी क्षण भर खड़ी रही—फिर लौटी। चौके की एक-एक चीज थाल में भर कर वह निकल आई—मिनट भर में चीजें समाप्त हो गई, क्षुधा-पीडितों की बाढ़ बढ़ती गई। ऊँचे पर खड़ी होकर बोली मीना—ठहरो आज जी भर कर तुम्हें खिला लूँ। ठिठुरते हुए बच्चे बूढ़े उसके आगे बढ़ गए—भूखे बच्चे बैठे कौतुक से माँ की प्रतीक्षा कर रहे थे। मनोकान्त ने विह्वल आँखों से पत्नी की ओर देखा जो बैठी बड़े देग में चावल की कनी अन्दाज रही थी—नीचे भूखों की भीड़। मीना फल, मूल, चने आदि को लेकर देर तक खोई रही।

अन्न का भण्डार खाली हो गया। एक-एक दाना तक उसने बाँट दिया। साड़ियाँ, बच्चों के कपड़े, पति के कोट तक न बचे। धीरे धीरे भीड़ शहर की ओर लौट गई। आशीर्वादों की राशि लेकर मीना लौटी।

रात तब अधिक बीत चुकी थी। बच्चे सो चुके थे। मुँह सूखे और कुँभलाये हुए थे। पति की ओर दृष्टि पड़ते ही वह चौंक पड़ी। बार्ली जरा भी नहीं बची थी। अपराधिनी-सी खड़ी वह सोचने लगी...मनीकान्त ने मुस्करा कर कहा—अन्नपूर्णा बच्चे भूखे हैं।

मीना व्याकुल-सी बोली—बार्ली...बार्ली भी तो नहीं बची, तुम्हें क्या दूँ?

मुझे कुछ नहीं चाहिए, आज मैं अपनी लक्ष्मी को पा गया। उल्लसित स्वर में बोले मनीकान्त।

आज बहुत दिनों बाद लक्ष्मी अन्नपूर्णा का प्रिय सम्बोधन सुन कर मीना का अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा। मधुर मुस्कान में भर कर बोली—लेकिन दान तो मीना के हाथों ने ही किया।

नहीं, कभी नहीं, मेरी मीना में अन्नपूर्णा और लक्ष्मी ने आकर भूखों को भोजन दिया है। आज मैं बहुत दिन का खोया सुख और शान्ति पा गया।

दृष्टि-भ्रम

महीनों दौड़-धूप के बाद नौकरी पाने की जो खुशी होती है वह किसी शरीफ खान-दान के गरीब नवयुवक से पूछिए, जिस पर माँ पत्नी बच्चे भाई बहन, कितने ही लोगों की आशाएँ बँधी रहती हैं। मेरे पाँव भी खुशी से जमीन पर नहीं पड़ते थे। महीने में अट्ठारह रुपए रोटी दाल के लिये कम नहीं पड़ेंगे, परिवार भी बहुत बड़ा नहीं—पत्नी लता और दो लड़कियाँ रानी और मुन्नी, बस कुल चार प्राणियों का सीमित-सा परिवार, माँ पिछले साल गुजर चुकी थी, बहन की शादी हो चुकी थी। द्वार की सिकड़ी खटखटाते ही लता उठ आई, मेरे मुँह पर उल्लास की छटा देख कर बोली—क्या हुआ?

काम मिल गया, कल से जाना होगा—मैंने गर्व से उत्तर दिया।

काम क्या है—लता ने सहज हास्य से भर कर पूछा।

एक क्षण के लिए स्वाभिमान जागा, इच्छा हुई कह दूँ—नहीं लता काम आज भी कुछ नहीं मिला; लेकिन सहज ही उसकी

यह आशा तोड़ी नहीं गई। धीरे से कह दिया ड्राइवर का काम है। सेठजी बहुत अच्छे आदमी है, तरक्की की आशा है, सम्भव है जल्दी ही काम बदल भी दें।

ड्राइवर। लता को मानो सांप सूँघ गया। वह एक क्षण के लिए निस्पन्द-सी रह गई, हाँ, ड्राइवर—और मेरे लिए क्या डिप्टी कलेक्टरी धरी थी—हँसते हुए उसकी दुबली कलाई दबा दी मैंने।

फिर भी...कुछ कहना चाहते हुए भी उसने बातें पलट दीं और बोली—खाया नहीं दिन भर से कुछ चलो कुछ खा तो लो।

चलो—रानी को गोद में लेकर मैंने मुन्नी की उँगली पकड़ कर कहा। वह उठ कर रसोई घर में चली गई।

× × ×

२

सेठ घनश्यामदास अभी नवयुवक ही थे, उम्र भी यही २८-२९ की, लम्बा किन्तु कुछ स्थूल शरीर, गोरा रङ्ग, आँखें कुछ छोटी, दुनिया की माप-तौल में विशेष विज्ञ, बातें मीठी किन्तु बहुत कम करते, सुबह-सुबह उन्होंने मुझे काम समझाया—वहाँ कुसुम कुंज में रहना होगा तुम्हें, मालकिन जब जहाँ घूमने जाना चाहें ले जाना होगा, शाम को मिल में मुझे मोटर सहित मिलो, उसके बाद पार्क तक, यही २-३ घंटे, उसके बाद कुसुम कुंज में उतार कर तुम्हें छुट्टी रहेगी। समझ गए?

सेठजी की कोठी आ पहुँची थी वह उतर पड़ी।

अत्यधिक श्रम से मुझे ज्वर हो आया, कई दिन बाद जब कुसुम कुंज गया, तब फूल स्वयं निकल आई, पूछा—अभय बाबू इधर कई दिनों से आप नहीं आए, क्या बात थी ?

जी, नहीं आ सका, बुखार आने लगा था, आपको बड़ी तकलीफ होती रही होगी ?

नहीं, कुछ अधिक नहीं, मोटर मैं अब अच्छी तरह चला लेती हूँ। आप की तबीयत अब कैसी है ?

अच्छी ही है, इम्तहान का दिन करीब है, कुछ दिनों की छुट्टी लेना चाहता हूँ।

छुट्टी जरूर लीजिए, अभी आप कमजोर-से दीखते हैं। क्या खाएँगे आप ? मँगवाऊँ कुछ ?

आप क्यों तकलीफ करेंगी, मैं खा आया हूँ।

उसके संकेत पर परिचारिका दूध लाकर रख गई, उसने अपने हाथों से गिलास उठा कर मेरे सामने कर दिया—देखा उसकी आखें कुछ कह रही हैं। मैंने जल्दी से गिलास उठा कर मुँह से लगा लिया—वह तब तक चुपचाप खड़ी रही, उसके बाद बहुत ही स्नेहपूर्ण स्वर में बोली—आज मैं कहीं जाऊँगी नहीं, आप जाकर आराम करें, इस धूप में घर लौटना ठीक न होगा।

मैं संकोच के साथ बोला—अगर मेरी जरूरत न हो तो मैं लौट जाऊँ, और भी कुछ काम करना है, फीस के लिए रुपए का प्रबन्ध भी करना है।

आपने मुझसे नहीं कहा—और एक क्षण में लौट कर तीन नोट उसने मेरे सामने रख कर कहा—और जरूरत हो तो कहिएगा।

नहीं, नहीं—इन्हें आप अपने पास ही रखें। वैसी जरूरत होने पर मैं सेठजी से ले लूँगा।—मैंने तीनों नोट उसके सामने खिसका दिए।

अत्यन्त कातर होकर वह बोली—अभय बाबू! आप मुझे गैर समझते हैं, या इन रुपयों से घृणा करते हैं? ये रुपये भी तो सेठजी के ही हैं।

हैं तो क्या? इस समय मुझे अधिक आवश्यकता नहीं है, इन रुपयों को मैं नहीं ले सकता।

एक क्षण तक वह मौन रही, मैंने उत्तर के लिए उसकी ओर दृष्टिपात किया, अत्यन्त विस्मय से देखा—आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें उसके गुलाबी कपोलों पर झिलमिला रही हैं।

रोती हैं आप? मैंने आश्चर्य से घबरा कर पूछा

अभय...अभय बाबू...उसके होठ काँप रहे थे।

मेरे युवक हृदय ने नारी के आँसूओं का मूल्य आँका। सेठ घनश्यामदास की आकृति मेरे सामने नाच उठी, एक दैत्य के रूप में जिसके विशाल पंजों में यह कोमल-सी नारी फूल कुचल उठी थी। सौन्दर्य विकास पाने के पहले ही श्री हीन हो उठा था। दिन प्रतिदिन सेठजी का आना कम हो रहा था, मेरे हृदय में स्पन्दन हो उठा, एक क्षण के लिए मैं अपनी लता को

भूल गया। मेरे हाथ फूल के कंधे पर जा पड़े, हृदय के कुत्सित भाव ओठों से प्रगट हो गए—फूल, मैं विवाहित हूँ, किन्तु तुम्हारे लिए सब कुछ करूँगा...

उसने मेरा हाथ अपने कंधे पर से धीरे-धीरे उतार दिया और बोली—अभय ! फूल तुमसे जो चाहती है वह दे सकोगे ?

दूँगा, फूल तुम्हें देने के लिए मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं।

और अपने उस उन्मत्त मस्तिष्क से मैंने सुना फूल कह रही थी—तो एक बार मुझे भाई का प्यार, भ्रातृत्व की स्नेह-भरी दृष्टि से मेरी ओर देख कर मुझे अपनी छोटी बहन कह कर पुकारो, अभय भैया ! नारी जन्म की वेश्या नहीं होती, और वेश्या होने पर भी क्या अन्तर की भूख मिट जाती है ? नहीं, भाई का प्यार, पिता का स्नेह, सन्तान का वात्सल्य तब भी उसके अन्तर में प्रतिदान के लिए सजग रहता है। दृष्टि-भ्रम में पड़ कर तुमने जो सोचा वह क्षन्तव्य है। तुम जिस दिन से यहाँ आए उसी दिन से लगता है मेरे भैया लौट आए हैं, तुम्हारी-सी आकृति, तुम्हारी-सी ही गठन, तुम्हारी ही उम्र, इतनी समता पाकर कितनी ही बार इच्छा हुई तुम्हें भैया कह कर पुकारूँ, अपनी मातृ-पितृ हीना दुलारी फूल को छोड़ कर जिस दिन भैया ने आँखें मूँद लीं तब से आजतक भैया शब्द मेरे ओठों पर नहीं आया—कितनी वार सोचा क्या वेश्या के लिए इस विशाल विश्व में कहीं भी भाई का स्नेह नहीं मिल सकेगा ? बोलो अभय, बना सकोगे मुझे अपनी बहन ! भ्रातृत्व की भूखी एक नारी की बुभुक्षा शान्त कर सकोगे ?

मेरी आँखें चौंधियाँ उठीं—नारी का कितना पवित्र रूप था ! फूल के प्रति मेरी अपार श्रद्धा उमड़ आई। स्नेहपूर्ण हाथों से उसके आँसूओं को सुखाते हुए मैंने कहा—शान्त हो फूल, तुम्हारी इतनी उच्च भावनाओं का सामना मेरा अपराधी हृदय शायद कभी न कर सकेगा। तुम मानवी नहीं, देवी हो।

देवी नहीं, अगर कभी मेरी याद करना तो छोटी बहन समझ कर अभय भैया, अब जाओ तुम।

जिससे घृणा करना चाहा था, उसी के प्रति अपार श्रद्धा लेकर अपने से घृणा करता हुआ मैं घर लौटा आ रहा था।।

अन्तिम विदा

दो साल बाद छुट्टियों में नन्दलाल बुआ के घर आया था। अच्छा-खासा प्रोग्राम बना रक्खा था—कम-से-कम डेढ़ महीने नैनीताल या अल्मोड़ा, १५ दिन माँ के पास, १५ दिन बड़े भाई के पास देहली में। भाभी ने बड़े आग्रह से बुला भेजा था, और छुट्टियाँ शुरू होने के पहले ही दो तार भी आये कि पहले यहीं आना।

लेकिन वह प्रोग्राम एकाएक रद्द हो गया। इम्तहान खत्म होने के दूसरे ही दिन पिताजी के पास से तार और खत एक साथ आ गए कि—सीधे बुआ के यहाँ बक्सर जाओ। वह बीमार हैं। अकेली बहू क्या कर सकती है? और है भी तो बहू अभी बिलकुल बच्ची-सी। छुट्टी मिल गई, तो मैं भी आऊँगा।

बँधे हुए रंगीन मनसूबे टूट गए। मन के सेवा-भाव ने ज़ोर मारा। उसकी विजय हुई। तैयारी शुरू हो गई। जरूरी सामान लेकर वह बक्सर चला। बाकी चीजें नौकर के साथ घर भेज दीं।

रेल पर बैठे-बैठे जाने कितने ताने-बाने बुने उसने। दो

साल पहले वह आया था फुफेरे भाई दिनेश की शादी में। तब दो घंटे तक भटकने के बाद कहीं घर मिला। बुआ ने देखते ही गोद में भर लिया था छोटे बच्चे की तरह। उसे कितनी शर्म लगी थी! दिनेश ने हँसते हुए कहा था—देखो नन्दलाल, अम्माँ तुम्हें कितना प्यार करती हैं! मैके की चीजें, मैके के लोग स्त्रियों को प्यारे होते ही हैं। वह पाँच-छः दिन रहा दिनेश के पीछे-पीछे छाया की तरह। बारात वापस आई। नव-वधू निर्मला को देखने के लिए वह कितना उत्सुक था। चुपके से दिनेश के कान में कहा—भाभी से मेरा परिचय तो करा दो, भैया।

मैं? दिनेश हँसा। नहीं, भाई तुम आप ही मिल लो जा कर। मैं बीच में क्यों पड़ूँ?

बुआ ने सुना। हँसी, और पकड़ कर कमरे में ले गईं। रेशमी कपड़ों में सिमटी निर्मला चुपचाप बैठी थी। बुआ ने मुँह दिखाया, रिश्ता समझाया और बहू को बातचीत करने का आदेश देकर चली गईं।

निर्मला हँसमुख लड़की थी। जरा देर में खुल कर बातें करने लगी। कितनी अच्छी लगती थी तब निर्मला। बात-बात में हँसती थी। पूछा था—इस साल किस इम्तहान में बैठे थे आप?

बी० ए० किया है मैंने।

अच्छा। और उन आश्चर्य-भरी आँखों के कारण उसका सौन्दर्य कितना मोहक हो उठा था।

आपको आश्चर्य होता है।

हाँ।

क्यों?

एज (उम्र) बहुत कम है।

नन्दलाल खिलखिला कर हँस पड़ा। ओह! तो आपने मुझे बिलकुल नन्हा-मुन्ना समझ रक्खा है। विश्वास कीजिए, मैं दिनेश भैया से कुल पन्द्रह दिन छोटा हूँ, ज्यादा नहीं।

तो आपकी शादी में भी अब कुल पन्द्रह दिन की देर होगी। है न यही बात?

पन्द्रह दिन...जी नहीं, पन्द्रह वर्ष समझ लीजिए। दिनेश भैया की तरह मैं नहीं हूँ।

निर्मला हँसी। क्यों, शादी करके क्या उन्होंने कोई पाप किया है?

जरूर पाप किया है। अभी लॉ का एक साल बाकी है। पैक्टिस शुरू करने मे कम से कम डेढ़ साल लगेंगे। तब तक शादी, बीबी, बच्चे।

निर्मला शर्मा गई। बच्चे-बच्चे की बात अभी अच्छी नहीं लगती। अभी तो वह स्वयं ही बच्ची है। पन्द्रहवाँ वर्ष पूरा होते ही पैरों मे विवाह की बेड़ी पड़ गई। यो अपने उत्तरादायित्व से वह सर्वथा अनभिज्ञ नहीं है, लेकिन...लज्जा से उसका सुन्दर मुँह लाल हो उठा।

नन्दलाल की विचार-धारा गम्भीर हो गई। दो साल पहले की सुखद स्मृतियाँ धीरे-धीरे मिट गईं। पिछले साल विवाह के

कुल ग्यारह महीने बाद दिनेश को कालरा हो गया, और माँ और पत्नी को रोती-बिलखती छोड़ कर वह एक दिन चुपचाप परलोक सिधार गया। नन्दलाल का जी बैठने लगा। उस घर में जहाँ दिनेश की स्मृतियाँ कण-कण में विद्यमान हैं, एक क्षण भी क्या वह ठहर सकेगा वहाँ? उसकी इच्छा हुई कि दूसरी गाड़ी से लौट जायँ। लेकिन जब गाड़ी बक्सर स्टेशन पर रुकी तो वह चुपचाप उतर पड़ा, और बुआ के घर की ओर रवाना हो गया।

बुआ की अस्थियाँ भर शेष थीं। नन्दलाल को देख कर वह रो पड़ी। दिनेश की याद फिर ताजी हो उठी। नन्दलाल भी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो उठा।

मुँह ढँके हुए निर्मला आई और नाश्ते की तश्तरी और जल से भरा गिलास रख कर चली गई। नन्दलाल का ध्यान उधर नहीं गया। पूछा—बुआ, भाभी नहीं दिखाई देतीं?

है भैया, बुआ ने रुँधे हुए गले से कहा—अभी आई थी वह। क्या देखोगे उसे...और वह फिर रो उठीं।

नन्दलाल विस्मय में डूबा सोच रहा था—भगवान् कैसी क्रूर है तुम्हारी लीला। अपने दया-सागर दीन-वत्सल नामों की लाज भी तुमने न रक्खी।

निर्मला फिर आई। दवा की शीशी उठा कर, पान मोड़ते हुए बोली—डाक्टर साहब के यहाँ आदमी भेज आई हूँ! वह आते होंगे। तब तक जल-पान कर लीजिए।

नन्दलाल ने मिठाई तोड़ कर मुँह में रख ली। निर्मला बुआ को दवा पिला कर पंखा झलने लगी।

निर्मला के उस जीवित शव को देख कर नन्दलाल सिहर उठा।

शाम को बुआ कुछ ठीक थीं। निर्मला को बुला कर उन्होंने आदेश दिया—अपने हाथ से कुछ बना कर नन्दलाल के खाने के लिए ले आओ। तब तक वह मेरे पास बैठा रहेगा।

निर्मला चली गई।

नन्दलाल बुआ का जी बहलाने के लिए इधर-उधर की बातें करता रहा। बुआ सब सुनती रही। नन्दलाल की बातें धीरे-धीरे खत्म हो गईं। बुआ ने उठने का प्रयास करते हुए कहा—मुझे तुमसे कुछ कहना है बेटा।

तकिए के सहारे बुआ को बैठा कर नन्दलाल बोला—कहो न बुआ। क्या कहना चाहती हो तुम ?

मेरे बाद बहु का क्या होगा नन्दू ?

होगा क्या ? आप दो चार दिन में अच्छी हो जायेंगी।

बुआ का मुख विवर्ण हो उठा। नन्दलाल डरा। उसने उन्हें लेटा कर पूछा—क्या तकलीफ कुछ ज्यादा है, बुआ ? डाक्टर को बुलाऊँ ?

नहीं-नहीं डाक्टर की जरूरत नहीं। तू चुपचाप बैठ कर मेरी बातें सुन ले।

नन्दलाल बैठ गया। बुआ बोली—मैं बचूँगी नहीं, और जीने की मेरी इच्छा है भी नहीं। जीवित रहने की इच्छा तो दिनेश

के साथ चली गई। इस पंजर पर अब मुझे तनिक भी ममता नहीं है। पर बहू का क्या होगा ? इसी चिन्ता के कारण मेरे प्राण जैसे अब तक अटके हुए हैं।

नन्दलाल की इच्छा हुई कि विधवा-विवाह का प्रस्ताव करे। पर बुआ के सामने सहसा कुछ कहने का साहस न हुआ। चुप बैठा रहा।

बुआ फिर बोली—जिन आँखों से उसे बनते देखा, उन्हीं आँखों से मिटते भी देखा। लेकिन अब उस मिटी हुई छाया के स्मृति-चिह्न को मिटने देना मैं नहीं चाहती, बेटा ! मेरे दिनेश को यह अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थी...बुआ की आँखों से आँसू एकदम झर उठे। नन्दलाल की आँखें भी सजल हो गई।

तनिक मन स्थिर होते ही नन्दलाल ने कहा—मेरे लिए आप जो आदेश देना चाहें निस्संकोच दे डालें। मरण-पर्यन्त मैं उसे निभाऊँगा, विश्वास कीजिए।

परम तृप्ति के साथ बुआ ने उसका हाथ पकड़ कर छाती पर दबा लिया।

पकवानों से भरी हुई थाली लिए निर्मला कमरे में आई। एक छोटे स्टूल पर थाली रख कर बोली—खाओ !

आग्रह नहीं था, अनुरोध भी नहीं था उसमें। लेकिन वह छोटा-सा शब्द 'खाओ' नन्दलाल को स्नेह से भींगा लगा।

उठ कर वह खाने के लिए बैठा।

रात्रि आई बुआ की काल-रात्रि बन कर। अचानक बारह-एक के बीच निर्मला ने आ कर उसे जगाया। जा कर देखा—बुआ की साँस जोर से चल रही थी। आँखों की पुतलियाँ धीरे-धीरे निश्चल होती जा रही थीं। डाक्टर को बुलाने के लिए आदमी भेज कर नन्दलाल दवा मालिश करने लगा। निर्मला रो पड़ी।

एक क्षण के लिए रोगिणी की आँखों में ज्योति फिर लौट आई। नन्दलाल का हाथ माँगा और बहू को बुला कर अस्पष्ट स्वर में बोली—सब कुछ तुम्हारे...हाथ में है। इसकी लाज निभाना। और निर्मला का हाथ उन्होंने नन्दलाल के हाथ में पकड़ा दिया।

दोनों के काँपते हुए हाथ एक क्षण के लिए उन निश्चेष्ट हाथों के बीच चिपक गए। बुआ ने आँखें मूँद लीं।

फिर वे आँखें न खुलीं। डाक्टर के दोनों इन्जेक्शन बेकार हो गए। बिलख-बिलख कर रोने लगी निर्मला। आज फिर दूसरी बार वह अनाथ हो गई।

बहुत से लोग जमा हुए। नन्दलाल के पिता, माता, भाई सभी आए।

क्रिया-कर्म के बाद दो सप्ताह बीत गए। सब लोग जाने को तैयार हुए। नन्दलाल की माँ ने निर्मल से कहा—इन्तजाम के सम्बन्ध की जरूरी बातें, जो दीदी तुम्हें बता गई हो, मुंशी को समझा दो। तुम्हें अकेली तो मैं छोड़ सकती नहीं।

पिता का घर छोड़ कर, एक नए घर में आ कर उसने उसे अपना बनाया था और अब उसे छोड़ कर एक नए घर में प्रवेश करने की उसे तनिक भी इच्छा न थी। इसमें सन्देह नहीं कि मामी स्नेहमई स्त्री थीं, फिर भी उनके वहाँ जा कर रहने में उसे संकोच हो रहा था। डरती हुई बोली—इतनी जल्दी मैं क्या-क्या कर पाऊँगी? मामाजी से पूछ कर मुझे दो-एक महीने के लिए यहीं क्यों न छोड़ दीजिए?

अच्छी बात है, कहूँगी।

निश्चित हुआ कि और सब लोग लौट जायँ, नन्दलाल एक महीना ठहर कर निर्मला के इच्छानुसार उसकी ज़मींदारी का प्रबन्ध करे, और उसके बाद मकान किराए पर उठा कर निर्मला को माँ के पास पहुँचा कर कालेज लौट जाय।

निर्मला निरुत्साह-सी सब काम पूरा करती रही। उसके इच्छानुसार नन्दलाल प्रबन्ध करता गया। अब दोनो में उतनी झिझक न थी। आवश्यकतानुसार निर्मला खुल कर तर्क-वितर्क भी कर लेती।

नीचे गर्मी ज्यादा लगती। नन्दलाल रात को ऊपर सोता। निर्मला नीचे आँगन में सोती। बूढ़ी नौकरानी रात भर खाँसती। निर्मला को अच्छी तरह नींद न आती। लेकिन अकेले वह रह न सकती—डर लगता। नन्दलाल ने देखा! कहा—आप ऊपर सोएँ। मैं आँगन में सो रहूँगा।

नहीं-नहीं, मैं ऊपर कभी नहीं सोती!

नन्दलाल हँसा। कहा—नहीं, इसे मैं सच नहीं मान सकता!

मैं झूठ नहीं बोलती! निर्मला बोली।

इसे भी मैं सच नहीं मान सकता!

जैसी आपकी इच्छा... निर्मला चुप हो गई।

आपको क्या मेरे ऊपर विश्वास नहीं है?

ऐसी आपने कौन-सी बात देखी?

नन्दलाल निरुत्तर हो गया। एक क्षण बाद बोला—बुआ की आज्ञा याद है आपको?

एक-एक अक्षर!

नन्दलाल ने साहस करके कहा—बुआ जिस तरह आपकी इच्छा के विरुद्ध आपको मुझे सौंप गईं, उसी तरह...

निर्मला ने झुकी आँखें ऊपर करके उसे देखा। उसकी वह दृष्टि कितनी दाहक थी! नन्दलाल उठ खड़ा हुआ। कहा—आज नहीं, फिर कभी इस विषय पर आपसे बातें करूँगा। इस वक्त टहलने जा रहा हूँ। और वह उठ कर जाने लगा।

जरा ठहरिए! निर्मला ने कहा।

नन्दलाल बैठ गया। निर्मला उठी। रसोई घर में जा कर वह दो मिनट के बाद लौटी। चाय का प्याला और जल-पान की तश्तरी उसके सामने रखती हुई बोली—खा लीजिए, तब जाइए!

छोटे बच्चे की तरह नन्दलाल खाने लगा। सहसा उसे एक बात याद आई। जेब से एक लिफाफा निकाल कर बोला—

अम्माँ का ख़त आया है। लिखा है उन्होंने कि इसी शुक्रवार को तुम बहू को ले कर सीधे घर लौट आओ। बहुत जरूरी है।

निर्मला ने पत्र ले कर पढ़ा और मुस्कराई। बहुत दिनों बाद उसके शुष्क ओठों पर मुस्कान की एक रेखा खिची। नन्दलाल ने देख कर सिर नीचे कर लिया। निर्मला बोली—और भी तो कुछ लिखा है। वह आपने नहीं बताया!

अनावश्यक बातें मुझे याद नहीं रहतीं!

अनावश्यक! इसमें तो एक भी अनावश्यक बात नहीं है!

मैंने पूरा खत पढ़ा नहीं!

मैं पढ़ती हूँ सुनिए! बहू, नंदलाल का विवाह कुछ इतनी जल्दी में निश्चित् हुआ कि और पहले तुम्हें खबर नहीं दे सकी। २५ मई को विवाह का दिन निश्चित हुआ है। शीघ्र ही तुम उसके साथ वहाँ से चल दो! लड़की अच्छी है। बहुत अच्छी है, अन्यथा साल दो साल के लिए विवाह टल भी सकता था...

नंदलाल हँसा। बोला—उसे अब भी टला ही समझिए।

क्यों ऐसा समझूँ?

मैं कहता हूँ न, इसलिए!

आप ऐसा क्यों कहते हैं? अब तो पढ़ाई भी खतम हो चली।

अपनी मरणासन्न बुआ के आदेश से बँधा हूँ! प्राण रहते अपने वचन की रक्षा करूँगा!

निर्मला चौंकी। फिर सँभल कर बोली—मैं आपको उससे मुक्त करती हूँ। मरते समय उनका हृदय सास का हृदय न था, माँ की ममता फिर सजीव हो उठी थी! मैं जानती हूँ, मेरी चिन्ता उन्हें अन्त समय तक विकल किए रही। उस व्याकुलता की दशा में वह जो कह गई, वह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। इस तरह की बातें उन्होंने दो एक बार मुझसे भी कही थीं। लेकिन मैंने जब कभी सुना, चुप रही। विरोध करने की इच्छा रहते हुए भी मैं कुछ कह न पाती। शायद मेरा मौन देख कर ही उन्होंने आपसे वह बात कही। इस लिये...कृपया आप अपने आपको वचन-बद्ध न समझिए।

सम्भव है, आप जो-कुछ कहती हैं, ठीक हो पर जाने या अनजाने में मैंने जो भार उठा लिया है या उठा लेने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, उसे छोड़ नहीं सकता। मेरा वचन अटल है! यह विवाह नहीं होगा! हाँ, आप चलने के लिए जब तैयार हों, मैं चला चलूँगा।

कल भर ठहरिए। परसों शाम की ट्रेन से चलूँगी।

नन्दलाल मुँह धोकर बाहर चला गया।

ट्रेन लेट थी। भीड़ बहुत थी। रात के ग्यारह बजे गाड़ी छूटी। एक आदमी की जगह मुश्किल से मिली। निर्मला को बैठा कर, नन्दलाल खड़ा रह गया।

दो-तीन स्टेशन निकल गए। अब भी जगह की कोई गुंजाइश न देख कर, निर्मला ने जरा-सा जगह में और सिकुड़ कर उसे बैठने को कहा।

नन्दलाल ने कहा—नहीं, आप बैठिए आराम से। मुझे कोई तकलीफ नहीं है।

इस बार निर्मला तनिक क्रुद्ध-सी, अधिकार भरे स्वर में बोली—बस यही ज़िद मुझे अच्छी नहीं लगती! तुम नहीं बैठते, तो लो, मैं भी खड़ी हुई जाती हूँ।

बगल में बैठी हुई स्त्री ने उसे गौर से देखा। नंदलाल उसकी बगल में बैठ गया। इतने दिनों बाद कृत्रिम सभ्यता की सीमा लाँघ कर, लज्जा के पर्दे को फाड़ कर, जो इस तरह की बात निर्मला के मुँह से निकली, उसे सुन कर जैसे नंदलाल तृप्त हो गया!

पास की सीट पर कोई नव-दंपति आसीन थे। युवती साधारण-सी थी—साँवला रंग, एकहरी देह, मुख भी मामूली सा। किन्तु उसके मुख पर आनंद और तृप्ति की जो छटा थी वह निराली थी। आँखों की पुतलियाँ और भौंहें तक जैसे मुस्करा कर अपने उल्लास को प्रकट कर रही थीं। रेशमी साड़ी का अंचल ज़रा भी खिसका नहीं कि पति ने ठीक किया। कोई बड़ा स्टेशन आया नहीं कि पति ने पूछ-ताँछ शुरू की—यह लाऊँ, वह लाऊँ, नमकीन, फल, दूध, चाय...युवती के नहीं-नहीं करने पर भी थोड़ी-थोड़ी चीज़ें कई स्टेशनों पर खरीदी गईं और साथ-साथ खाई गईं। और दोनों बराबर हँसते-बोलते रहे। रात ज्यों-ज्यों बीतती गई, युवती अलसाती गई। युवक ने इधर-उधर देखा, फिर विवश होकर बोला—एक मुसीबत है आज-कल सफर करना! सेकेंड क्लास का यह हाल है! अच्छा,

रानी, तो तुम अब कुछ सो रहो, नहीं तो तबियत खराब हो जाएगी !

सो रहूँ ? पर कहाँ सो रहूँ ? जगह कहाँ है ? युवती जैसे मचल कर बोली।

यहाँ। और युवक ने अपना पाँव नीचे रक्खे बिस्तर पर टेक कर युवती की आधी देह अपनी गोद में खींच ली। युवती ने मुस्करा कर आँखें मूँद ली।

डिब्बे में बैठे हुए अन्य यात्री मुस्कराए, कुछ ने काना-फूसी की। कुछ ने रसिक नेत्रों से, कुछ ने ईर्ष्यापूर्ण दृष्टियों से इस जोड़े को देखा।

निर्मला की आँखें लज्जा से नत हो गईं। नन्दलाल ने अपराधी की भाँति पूछा—प्यास लगी है ?

प्यास लगी थी। वे दोनों छः बजे ही स्टेशन आ गए थे। लेकिन निर्मला ने धीरे से कहा—नहीं।

नन्दलाल अपने ऊपर झुँझला उठा—आखिर मुझे अपनी अक्ल से भी तो कुछ करना था ? निर्मला अभी इतनी निस्संकोच हुई है कि मुझसे कुछ कहती ? चलते समय उसने शायद कुछ खाया भी नहीं था। जो-कुछ बन सका, मुझे खिला कर सामान बाँधने-बूँधने में लग गई थी।

उसे चुप देख कर निर्मला ने कहा—तुम अपने लिए कुछ ले लो ! चलते वक्त जल्दी में ठीक तरह खाया भी तो नहीं ाया था।

अब नन्दलाल की बारी थी। उसने कहा—नहीं !

निर्मला चुप-चाप बैठ रही। लेकिन स्टेशन आते ही उसने खिड़की के बाहर झुक कर थोड़ी रबड़ी, कुलफी और नमकीन खरीद ली, और नन्दलाल के हाथ पर रखती हुई बोली—लो, खाओ ! पानी अभी आ जाएगा।

नन्दलाल ने डरते-डरते कहा—मैं अकेले तो नहीं खाऊँगा !

खाना पड़ेगा तुम्हें ! 'ना' का तो कोई सवाल ही नहीं ! लो, जल्दी करो ! देखो, मेरे कपड़ों पर न गिराना !

नन्दलाल खाने लगा। बोला—और तुम ?

मैं कुछ नहीं खाऊँगी ! निर्मला ने पानी का गिलास हाथ में सँभालते हुए कहा।

यात्रियों की दृष्टियाँ इस बार इन दोनों पर थीं। दो तीन स्टेशन और निकल गए। निर्मला की थकी देह नींद से बेसुध होने लगी। कई बार उसे झपकियाँ आईं। ज्यों ही जरा-सा धक्का लगता, वह आँखें खोल देती। उस भरे हुए डिब्बे में उसकी शून्य दृष्टि इधर-उधर टकरा कर लौट आती। धीरे-धीरे उसकी आँखें फिर झपकने लगीं, और उसका सिर नन्दलाल के मुड़े हुए घुटनों पर छाता के पास आकर स्थिर हो गया। खुला हुआ सुन्दर छोटा-सा मुँह ! नन्हीं बालिका-सी निश्चिन्त वह सो रही थी। सामने सीट पर बैठे एक वृद्ध सज्जन ने नन्दलाल से पूछा—कहाँ से आ रहे हो बेटा ?

बक्सर से, नन्दलाल ने कहा।

ये तुम्हारी स्त्री हैं ?

नन्दलाल एक क्षण के लिए झिझका। सच कह कर निर्मला

को उनकी दृष्टि में गिराना उसने उचित नहीं समझा। धीरे से बोला—जी !

कमजोर-सी लगती हैं। बीमार हैं शायद ? वृद्ध ने कहा, सम्भवतः परिचित होने के लिए।

नन्दलाल ने इस बार भी धीरे से ही कहा—जी !

आज-कल का सफर यों भी एक मुसीबत है, और बीमार लोगों के लिए तो और भी !

जी !

पाश्चात्य सभ्यता ने हमारे घर की स्त्रियों का स्वास्थ्य चौपट कर दिया है। और उसने उन्हें बदनाम भी कर दिया है, अन्यथा सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि हमारे इसी भारत की विभूतियाँ थीं, जिनका गौरव, जिनका यश प्रातः-स्मरणीय है।

नन्दलाल ने इस बार भी संक्षेप में कहा—जी !

नन्दलाल जितना ही बचना चाहता था, वृद्ध महाशय बातें आगे बढ़ाने को उतने ही उत्सुक थे। बोले—तो शायद तुम इनके इलाज के ही सिलसिले में जा रहे हो ?

जी !

धक्का लगा। ट्रेन ठहर गई। निर्मला ने आँखें खोल दीं। अपना सिर नन्दलाल की गोद में पा कर वह एक क्षण के लिए विस्मित हुई। उठ बैठी। डिब्बा वैसे ही भरा था। प्रायः सभी यात्री ऊँघ रहे थे। उसकी आँखें नन्दलाल से न मिल सकीं। हाथों से मीच कर उसने मुँह ढँक लिया। भगवान् तुम मुझे कहाँ लिए जा रहे हो ? विधवा नारी, जिसकी उमंगे, तरंगे,

इच्छाएँ पति की चिता पर जल कर राख हो गईं, जिसके हृदय का प्रेम सूख गया, उसके अन्दर आज यह अनिर्वचनीय आनन्द कैसा ? यह सिहरन कैसी ? स्वामी, मेरे स्वामी, तुम बचाओ मुझे ! तुम्हारी निर्मला आज किधर जा रही है ? उसकी आँखों से आँसू छलक पड़े ।

उसकी आँखों के सामने दिनेश की धुँधली आकृति आई, और धीरे-धीरे स्पष्ट हुई । वही सौम्य मुख-मण्डल ! स्वस्थ, सबल दिनेश, मानो कह रहा है—निर्मला, पागल न बनो ! पाषाण प्रतिमाओं के बीच अपने को भुला कर अपना जीवन नष्ट न करो ! नन्दलाल का त्याग, नन्दलाल का प्रेम ठुकराने की वस्तु नहीं ! नन्दलाल मेरा कितना अभिन्न आत्मीय, कितना प्यारा है ! मुझे तुम उसी में पाओगी !...'

आँखें मीच कर उसने मुँह पोंछ डाला, और तनिक शान्त हो कर बोली—वहाँ कब तक पहुँचेंगे ?

ट्रेन लेट है । सुबह आठ बजे से पहले नहीं पहुँचेंगे—नन्दलाल ने कहा ।

तुम सोए नहीं ?

नहीं ।

अब सो रहो !

नींद नहीं आती ।

आ जाएगी, सोओ तो । निर्मला उठ गई । नीचे ट्रङ्क पर जगह अब खाली थी । बैठ कर तकिया निकाला, और अपनी

खाली जगह पर रखती हुई बोली—सो रहो तुम ! मैं बैठी हूँ। अभी तो उतरने में देर है। छः बजते ही जगा दूँगी।

नन्दलाल ने हठ नहीं किया। उठँग कर आँखें बन्द कर लीं।

ट्रेन चल रही थी। एक अधेड़ महिला ने बड़ी मीठी आवाज में पूछा—क्यों, बेटी, बच्चे-वच्चे नहीं हैं तुम्हारे ?

निर्मला ने नकार-सूचक भाव से सिर हिला दिया।

कितने दिन हुए तुम्हारे ब्याह को ?

निर्मला ने संकोच के साथ कहा—दो साल।

वह महिला थोड़ी देर चुप रहीं, फिर बोलीं—क्यों बेटी, सिन्दूर नहीं लगाती तुम ? सौभाग्यवती स्त्री को यों खाली-खाली नहीं रहना चाहिए ? पढ़ती हो क्या ?

निर्मला का मुँह लाल हो उठा। हृदय में एक आग-सी जल उठी। आज मैं अपना सच्चा परिचय भी देने लायक नहीं रह गई ! अभी-अभी नन्दलाल की गोद में सिर रख कर सोते जिन लोगों ने मुझे देखा है, सामने अपनी वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर देने से क्या मैं पतित नहीं समझी जाऊँगी ?... धीरे से बोली—नहीं, अब तो नहीं पढ़ती। पढ़ाई छूटे भी दो साल हो गए।

हाँ, ब्याह के बाद पढ़ने-लिखने का क्रम शिथिल हो ही जाता है।......तुम भले घर की बहू हो ! इस तरह के सफेद कपड़े, नंगे हाथ-पैर और सूना माथा तुम्हारे लिए ठीक नहीं !

निर्मला निरुत्तर रही। आँखें नीची कर के उसने अपना मुँह फेर लिया।

फिर निस्तब्धता छा गई। रात अब प्रायः समाप्त हो चली थी। ट्रेन के डिब्बे में ठण्ढी हवा के झोंके यात्रियों को मीठी थपकियाँ दे रहे थे। नन्दलाल अब भी सो रहा था।

निर्मला सामान ठीक करने में लग गई।

नन्दलाल के घर पहुँच कर निर्मला ने अपने को एक विचित्र वातावरण में पाया। उस घर में पाँव रखते ही अपने को अनेक कौतुक-भरी आँखों के सामने पा कर वह संकोच से दबी जा रही थी। नन्दलाल ने मौका पा कर कहा—घबराइए नहीं ! दो-चार दिन में सब ठीक हो जाएगा। जरा पुराने ख्याल के लोग हैं वहाँ।

लेकिन दो-चार दिन बाद सब ठीक होने के बजाय निर्मला ने देखा कि उसके विषय में तरह-तरह की आलोचना-प्रत्यालोचना होती रहती है। वह साफ कपड़े पहनती है, दोनों वक्त घंटों नहाती है, पाँव में चप्पल भी पहनने की उसकी आदत है, सास के हठ के कारण दो-तीन आभूषण जो पहन रक्खे थे—यही सब आलोचना के विषय थे। वह चिन्तित हो उठी। किन्तु उससे भी अधिक उसे तब चिन्ता हुई, जब नन्दलाल की भाभी ने उसकी इच्छा सब पर प्रगट की कि वह विवाह नहीं करेगा।

निर्मला ने भी सुना। उन जेठानी जी को अकेली पा कर उसने पूछा—जीजी, सचमुच नन्दलाल बाबू ब्याह नहीं करेंगे ?

हाँ, कहा तो उन्होंने यही है !

आपने वजह नहीं पूछी ? आखिर बात क्या है ?

पूछा था। कहते हैं, फिलहाल तो शादी करेंगे नहीं, और

आगे करेंगे भी तो अपनी पसंद की किसी विधवा से विवाह करेंगे !

निर्मला ने दाँतों से जीभ दबा ली । उसका अंग-अंग सिहर उठा ।

मान-अपमान, धमकी-फटकार, सब-कुछ व्यर्थ हो गया । नन्दलाल विवाह करने के लिए राजी नहीं हुआ । पिता ने अन्तिम बार धमकाया—मैंने उन लोगों को जबान दे दी है ! मैं जलील नहीं बन सकता ! तुम्हें शादी करनी होगी, नहीं तो मेरे घर में तुम्हारे लिए जगह नहीं ।

नन्दलाल ने सिर झुका कर फिर इन्कार कर दिया ।

उसी रात को नन्दलाल ने दो पत्र लिखे । एक पत्र निर्मला के कमरे में रख दिया, दूसरा माँ के बिस्तर के नीचे । फिर वह घर छोड़ कर चला गया ।

सुबह जब चारों ओर लोग उसे खोज रहे थे, तब निर्मला ने पूजा की चौकी पर एक मुड़ा हुआ कागज पाया । यह नन्द-लाल का पत्र था । पढ़ा—

निर्मला भाभी, मेरे इस तरह घर छोड़ने पर शायद तुम्हें आश्चर्य हो, और सम्भव है तुम मुझे कायर भी समझो । पर वैसी कोई बात नहीं । तुम्हें तुम्हारे घर से ला कर मैंने जिस परिस्थिति में छोड़ा है, वह वास्तव में तुम्हारे लिए असहनीय है ! मैं जानता हूँ, तुम शान्त प्रकृति की, एकान्त-प्रिय स्त्री हो, और यहाँ का वायु-मण्डल सर्वथा तुम्हारे विपरीत है ।

बहुत सम्भव है कि अभी इससे भी कटु परिस्थितियों का

तुम्हें सामना करना पड़े। पर तुम्हारा जो-कुछ कर्त्तव्य है, वह तुम मुझसे अधिक समझ सकती हो! सम्भव है, और लोगों की तरह तुम भी नन्दलाल को दस-पाँच दिन में भूल जाओ, और यह शायद अनुचित भी न होगा। मैंने तुम्हारे लिए किया ही क्या है, जिस स्तम्भ पर मैं अपनी स्मृति अटल रखने का तुमसे अनुरोध करूँ? किन्तु नन्दलाल तुम्हारे लिये केवल एक साधारण प्राणी नहीं, बल्कि तुम्हारे स्वामी का अभिन्न मित्र और प्यारा भाई है। उनकी याद के साथ सम्भवत: नन्दलाल की याद भी तुम्हें बराबर आती रहेगी।

इस बार तुम्हारे बड़प्पन की सीमा लाँघ कर मैंने तुम्हारे लिए 'तुम' का प्रयोग किया है, इसके लिए क्षमा करना! एक ऐसी ही रात को तुम्हारा स्पर्श पा कर तुम्हारे सान्निध्य से प्रभावित हो कर मैंने एक प्रश्न के उत्तर में तुम्हें अपनी स्त्री बतलाया था! सम्भव है, वह कथन निरर्थक ही रह जाय, किन्तु मैंने जो कुछ कहा था वह मैंने नहीं बल्कि मेरी आत्मा ने कहा था! और जब कभी तुम चाहोगी, तुम्हें वह स्थान प्राप्त हो जायगा।

तुम्हारा—

नन्दलाल।

माँ के पत्र में अन्य बातों के अतिरिक्त उसने लिखा था—तुम डरना नहीं माँ, मैं आत्म-हत्या नहीं करूँगा! मेरी दृष्टि में ऐसे लोग कायर होते हैं। मैं वही करूँगा, जो तुम लोगों के साथ रह कर करता। नौकरी की खोज में मुझे अधिक भटकना शायद न पड़े। निश्चिन्त हो जाने पर तुम्हें फिर पत्र लिखूँगा।

किन्तु घर नहीं आऊँगा, शायद तब तक जब तक तुम उदारतापूर्वक निर्मला को अपनी बहू नहीं स्वीकार करोगे !...

मॉं ने सिर पीट लिया। बारी-बारी से वह खत घर के प्रत्येक प्राणी के हाथों में गया। निर्मला, अभागी निर्मला सब की आँखो में कॉंटे की तरह खटक उठी।

निर्मला ने भी पत्र का आशय सुना। स्तब्ध रह गई। अपनी कोई सफाई देने का भी उसे साहस न हुआ।

दिन सप्ताह और सप्ताह महीने के रूप में बदलने लगे। व्यंग्य और कटूक्तियॉं सुनते-सुनते निर्मला का हृदय पत्थर बन गया। मन-ही-मन कभी नन्दलाल पर झुँझलाती, कभी अपने ऊपर। कभी अतीत में भटकती, कभी भविष्य की कल्पनाओं में उलझती। घर के प्रत्येक प्राणी से ऑंखें बचाती फिरती। अपने कमरे में चुपचाप पड़ी रहती। कभी इच्छा होती, तो कुछ खा लेती; कभी बिना कुछ खाए-पिए पड़ी रहती। बच्चे, बड़े-बूढ़े सभी उससे दूर-दूर रहते। केवल बड़ी बहू शान्ती, जब छुट्टियों में घर आतीं, तो सास की ऑंख बचा कर उसके पास आ बैठतीं। अपराधिनी-सी निर्मला उनसे भी डरती रहती। नन्दलाल के विषय में अगर कभी कोई बात वह छेड़ बैठतीं, तो वह पसीने-पसीने हो जाती।

इस बार भी जब शान्ती आईं, तो शाम को कहीं मौका मिला। चुपके से उस कमरे में आ बैठीं। निर्मला को देख कर पूछा—तबीयत ठीक नहीं है क्या ?

अच्छी तो हूँ, जीजी।

यह तो देख ही रही हूँ। अच्छा तमाशा है—इधर तुम प्राण देने पर तुली बैठी हो, उधर वह!

सभीत, संकोच-सहित निर्मला ने पूछा—क्या वह बीमार हैं?

बीमार ही समझो! देह आधी भी नहीं रह गई है। इस बार एक दिन की छुट्टी ले कर वह (उसके पति) खुद गए, तो उन्हें जबरदस्ती दिल्ली ले आए।

निर्मला ने आगे कुछ नहीं पूछा।

शान्ती स्वयं बोलीं—निर्मला, नारी के अस्तित्व का आधार क्या है, जानती हो?

नहीं, जीजी!

त्याग! तुम्हें अपने लिए नहीं, तो कम-से-कम नन्दलाल की जिन्दगी के लिए अपना बलिदान करना होगा।

निर्मला रो पड़ी। बोली—मेरे रक्त का एक-एक बूँद उनके लिए अर्पण है।

प्रतिज्ञा करती हो?

करती हूँ!

तो उनके पत्र का उत्तर दो। यही लिखो, जो तुमने अभी कहा है।

बलिदान बलिदान करने से होता है जीजी, लिखने या कहने से नहीं! मेरी जिन्दगी शायद अब पूरी हो चली है...

शान्ती ने अपनी हथेलियों से उसका मुँह बन्द कर दिया। बोलीं—पागलपन न करो! मेरी बात तुम शायद अभी तक नहीं समझी। नन्दलाल ने जो कुछ निश्चय किया है, वह क्षणिक

गावेगमात्र नहीं है ! पहले मैं भी उन पर झुँझलाई थी, लेकिन अब मेरी वैसी धारणा नहीं है। बुआजी कुछ समझ कर ही तुम्हें उनको सौंप गई हैं, और शायद कभी...

निर्मला के मुँह पर पसीने की बूँदे झलक आई। बोली— जीजी, आप नहीं जानतीं—वैधव्य नारी की मृत्यु है। विधवा केवल एक जीवित शव-मात्र होती है !

शान्ती के नेत्र सजल हो गए। उसने एक पत्र निकाल कर उसके हाथ में दे दिया, और बोलीं—हो सके, तो इसका उत्तर अवश्य देना ! अधिक मुझे कुछ कहना नही है। और उठ कर चली गई।

निर्मला ने पत्र पढ़ा। पत्र लम्बा था, भावुकता से पूर्ण। नन्दलाल ने लिखा था—आजकल नागपुर में प्रोफेसर हूँ। कोई आर्थिक कष्ट मुझे नहीं है। और भी...कोई कष्ट नहीं है, किन्तु जब सोचता हूँ कि तुम्हें किस स्थिति में छोड़ आया हूँ तब मन विक्षिप्त-सा हो उठता है !...ऐसी ही बातों से पत्र भरा था।

निर्मला का हृदय जरा भी न पसीजा। वह कुछ विरक्त मन से उत्तर लिखने बैठ गई। उसने लिखा—माना कि अम्माँ जी मुझे तुम्हारे हाथों सौंप गई थीं, लेकिन क्या तुम मुझे पत्नी ही बना कर रख सकते थे ? बहन नहीं कह सकते थे ? भाभी नहीं मान सकते थे ? और यह विवाह का प्रसंग छेड़ कर तुमने मेरे साथ जो अत्याचार किया है, उसके लिए मैं कभी तुम्हें क्षमा न कर सकूँगी ! घर की दृष्टि मे, संसार की दृष्टि में मैं क्या रह गई ? कभी इस पर भी तुमने विचार किया है ? बचपन से मैं

नहीं जानती कि सुख है क्या चीज ! दूर के रिश्तेदारों के बीच मेरा लालन-पालन हुआ। पन्द्रह वर्ष पूरा होते ही विवाह हो गया। एक साथ ही सुख-सौभाग्य के सागर में मैं नहा उठी। अभी मैंने होश भी न सँभाला था कि भगवान् ने मेरा सब-कुछ अपहरण कर लिया। उसके बाद जो कुछ हुआ वह सब तो तुम जानते ही हो। मैं जानती हूँ, मेरे प्रति तुम्हारे मन में दया और सहानुभूति दोनों हैं, लेकिन उसे क्या तुम केवल इसी तरह व्यक्त कर सकते थे ? नारी की स्थिति क्या पुरुष के लिए केवल पत्नी ही तक सीमित है ? मैं जो यंत्रणाएँ सह रही हूँ उससे भी कठिन यंत्रणाएँ सहने के लिए तैयार हूँ। लेकिन...नहीं, मैं तुम्हारे लिए और कुछ नहीं लिख सकती। मैं जानती हूँ, तुम मेरे स्वामी के अभिन्न और प्रिय मित्र थे......

चित्त की उद्विग्नता में और जाने कितनी बातें लिख कर निर्मला ने पत्र डाक में डलवा दिया।

उत्तर की प्रतीक्षा न होते हुए भी, उसे आशा लगी थी कि शायद कोई पत्र आता हो। किन्तु एक-एक करके जब तीन महीने निकल गए, तब निर्मला निराश हो गई।

इधर कुछ समय से उसे बुखार रहने लगा था। गृह-स्वामिनी उसके प्रति उदासीन थीं। लेकिन वह कठोर-हृदया न थीं। यों तो वह अपने बाल-बच्चों में ही अधिक व्यस्त रहती थीं, लेकिन अब कभी-कभी उसे देख आती थीं। निर्मला सोचती—कदाचित् अन्त समय में मनुष्य इसी प्रकार सब की दया का पात्र हो जाता होगा ! मेरी मृत्यु इस घर के लिये शुभ होगी !

दिन-प्रति-दिन उसका स्वास्थ्य गिरता गया। महीने डेढ़ महीने के बुखार ही में वह हड्डियों का ढाँचा-मात्र रह गई।

आज निर्मला देखने में और दिनों से कुछ अच्छी थी। किन्तु डाक्टर ने देख कर बताया—आज का दिन बड़े खतरे का है! दिल बेहद कमजोर हो गया है, किसी भी वक्त 'फेल' कर जा सकता है! कुछ ठंढ का भी असर हो गया है। हाथ-पाँव में कुछ सूजन भी आ गई है।

गृहस्वामिनी ने पति से कहा—अभी जा कर नन्दलाल को तार दे दो!

तार दे दिया गया। वह निर्मला के पास आई। पूछा—कैसा जी है बेटी?

निर्मला विस्मित हो गई। कई महीने से जिसने साधारण पूछ-ताँछ के अतिरिक्त कुछ नहीं किया था, सदा जिसकी दृष्टि से वह अपने को बचाती फिरती थी, उन्हीं के मुँह से 'बेटी' शब्द सुन कर आश्चर्य के साथ उसे विचित्र आनन्द की अनुभूति भी हुई। बोली—अच्छी हूँ मामी! आज तो और दिनों की अपेक्षा तबीयत हल्की है।

अब अच्छी हो जाओगी।

अच्छी होने की इच्छा तो नहीं है मामी!

फिर क्या इच्छा है, पगली?

निर्मला दो क्षण चुप रही, फिर बोली—अच्छी हो कर क्या करूँगी?

मीठी डाँट बता कर मामी चली गई।

शाम को निर्मला का बुखार कम होने लगा। शरीर में शिथिलता मालूम होने लगी। फिर भी किसी तरह प्रयास करके निर्मला उठी, अपना ट्रंक खोला, एक लाल साड़ी निकाली, किसी तरह उसे पहना ! अब वह एकदम थक गई थी। जमीन पर लेट गई। इसी साड़ी को पहन कर पहले-पहल उसने पति से साक्षात् किया था। इसी को पहन कर पहली बार नन्दलाल से मिली थी। किसी प्रकार हाथ बढ़ा कर उसने ट्रंक से कुंकुम की डिबिया निकाली। रूखे केशों को उलझी हुई माँग में सिन्दूर की रेखा खींची, और माथे पर बिन्दी लगाई।

तब एकाएक दरवाजा एकदम खुला और डाक्टर के साथ कई व्यक्तियों ने कमरे में प्रवेश किया। डाक्टर आश्चर्य से बोला—जमीन पर !

निर्मला ने अवरुद्ध कंठ से कहा—मामी, मुझे क्षमा करना।

आँसू से भीगी आँखें पोंछ कर मामी ने उसे पकड़ कर चारपाई पर लेटाया। बोलीं—ऐसा न कहो, बेटी ! मैं अब जान गई हूँ ! शायद तेरे साथ मैं अपने बेटे को भी खो दूँगी। मुझे क्षमा कर। नन्दलाल आज आता होगा।

दो क्षण तक निस्तब्धा छाई रही। निर्मला का मुख विवर्ण होने लगा। दीप झिलमिलाने लगा।

ताँगा रोक कर नन्दलाल उतरा। चुपचाप भीतर आया। आँगन में पिता का सामना हुआ। प्रणाम किया। निर्मला के कमरे में आया। पलंग के पास आकर झुक कर पूछा—निर्मला, मुझे पहचानती हो ? नन्दलाल हूँ मैं।